❋ श्रीश्री राधागिरिधरौ विजयेताम् ❋

❋ श्रीश्री गदाधरगौराङ्गौ जयतः ❋

श्री संकल्प कल्पद्रुमः

श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर विरचितः

श्री कृष्णदेव सार्वभौम विरचिता टीकोपेतः

श्री हरिदासशास्त्री

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

वृन्दावनपुरन्दर रसराजमूर्तिधर त्रिभुवनमनविमोहन ।
राधाहृदयबन्धु रासलीलारससिन्धु व्रजवासिगणप्राणधन ।।
जयजय श्रीनन्दनन्दन ।

※ श्रीश्री गदाधरगौराङ्गौ विजयेतेतमाम् ※

श्री संकल्प कल्पद्रुमः

श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर विरचितः

श्री कृष्णदेव सार्वभौम विरचिता टीकोपेतः

श्री वृन्दाबन वास्तव्येन न्याय वैशेषिक शास्त्र-
नव्य न्यायाचार्य्य-काव्य-व्याकरण-सांख्य-वेदान्त मीमांसा
तर्क-तर्क-तर्क-वैष्णवदर्शन तीर्थ-विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्री हरिदास शास्त्रिणा

सम्पादितश्च ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशकः

श्री गदाधर गौरहरि प्रेस
श्री हरिदास निवास
कालीदह वृन्दाबन

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

❊ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् ❊

❀ विज्ञप्ति ❀

करुणामय श्रीगोकुलानन्द देव की अनुकम्पासे "संकल्प कल्पद्रुम" नामक लोकोत्तर चमत्कारकारी ग्रन्थ का प्रकाशन मूल टीका, अनुवाद के साथ हुआ। ग्रन्थप्रणेता विश्रुतकीर्ति श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर हैं, टीकाकार तदीयशिष्य श्रीकृष्णदेवसार्वभौम हैं,

ग्रन्थकार का परिचयप्राचीनप्रशस्ति श्लोक से मिलता है,

विश्वस्य नाथ रूपोऽसौभक्तिवर्त्म प्रदर्शनात् ।

भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययाभवत् ॥

आपका जन्म शक—१५७६ में जिला मुर्शिदावाद के अन्तर्गत देव ग्राम में हुआ था, पिता का नाम श्रीराम नारायण चक्रवर्त्ती था। आप प्रगाढ़ पण्डित, महादार्शनिक परमभक्त, व्रज भक्ति रसवित्, श्रेष्ठ कवि, एवं वैष्णव चूड़ामणि थे।

आद्य महाप्रभु श्रीगौराङ्ग देव प्रवर्त्तित विशुद्ध भागवत धर्मका संस्थापन उनके मनोऽभीष्ट रूप में श्रीरूप, सनातन, गोपाल भट्ट, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, श्रीजीव गोस्वामी प्रभृतियों ने निष्कपटता व अथक परिश्रम से किया था, काल गति से उस में ग्राम्य धर्म की आविलता छागई थी, इसका प्रधान कारण ही श्रीकृष्णदास अधिकारी नामक एक सज्जन की स्वैरिता थी।

श्री जीव गोस्वामी चरण के अवर्त्तमान में उन्हों ने अपने को उनका शिष्य रूप में प्रचार कर श्री जीव गोस्वामी पाद के निखिल ग्रन्थों में जहाँ तहां कुछ परिवर्त्तन कर विशुद्ध व्रजभक्ति में परम स्वीयात्व के स्थान पर विवाहित स्वीयात्व को प्रवेश कराया। फलतः प्रवृत्ति मार्ग की दृष्टि में व्रजभक्ति वैकुण्ठ का पदार्थ न रहकर लौकिक आनुष्ठानिक दाम्पत्य धर्म में पर्य्यवसित हुई एवं निवृत्ति मार्ग में उक्त समस्त गुणों के साथ फल्गुवैराग्य, स्वार्थ परता

भगवत् सेवा एवं भगवत् सम्बन्धि वस्तु में विद्वेष, अप्रसादी अशुचि वस्तु में प्रगाढ़ आसक्ति, व निज मनोऽनुकूल कैतव धर्मका अनुशीलन ही प्रकृष्ट व्रज भक्ति होगई थी, एवं युक्ति वैराग्य का ताण्डव नृत्य जनगण मनो रञ्जन का देदीप्यमान साधन भी था।

चक्रवर्त्ती पाद ने उस समय अनेक विशुद्ध व्रज भक्ति प्रतिपादक ग्रन्थ रचना द्वारा उक्त कैतव धर्म को मूलतः उन्मूलित कर "अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा" लक्षणान्वित भक्ति धर्म का पुनर्वार संस्थापन किया। उक्त लक्षणाक्रान्त व्रजभक्ति ही प्राणीमात्र के सुख पूर्वक अवस्थान के लिए अपरिहार्य अवलम्बनीय धर्म है,।
इस प्रकारविशुद्धा भक्ति रक्षण द्वारा लोकोत्तर कार्य करने के कारण प्राणि मात्र उल्लास सम्पादन हेतु आपका विश्वनाथ नामसार्थक हुआ,

युक्तिवैराग्य रूप कैतवधर्म को विनष्टकर भक्तमण्डली में आपकी ख्याति चक्रवर्त्ती हुई, ओर भक्त लोक सव आपको श्रीरूप गोस्वामी जी का अवतारही मानने लगे।

आपकारचितस्वतन्त्रग्रन्थ,—

(१) श्री कृष्णभावनामृत (२) श्रीगौराङ्ग लीलामृत।
(३) ऐश्वर्य्यकादम्विनी, (४) माधुर्य्यकादम्बिनी,
(५) स्तवामृतलहरी, (६) भक्तिरसामृतसिन्धुविन्दु,
(७) उज्वलनीलमणिकिरण, (८) भागवतामृतकणा,
(९) रागवर्त्मचन्द्रिका (१०) गौरगणचन्द्रिका
(११) चमत्कार चन्द्रिका, (१२) सुरतकथामृतम्,
(१३) प्रेमसम्पुट (१४) व्रजरीतिचिन्तामणि;
(१५) क्षणदागीतिचिन्तामणि, (१६) संकल्पकल्पद्रुम,

※ व्याख्याग्रन्थ। ※

(१) सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतकी 'सारार्थ दर्शिनी टीका
(२) ,, गीता की 'सारार्थ वर्षिणी ,,
(३) ,, उज्वल नीलमणि की आनन्द चन्द्रिका ,,
(४) ,, भक्ति रसामृत सिन्धु की 'भक्तिसार प्रदर्शिनी ,,

(५)	,,	श्रीगोपालतापनी की भक्तहर्षिणी,		टीका
(६)	,,	ब्रह्मसंहिता	की	,,
(७)	,,	दानकेलीकौमुदी की महती		,,
(८)	,,	आनन्दवृन्दावनचम्पूकी 'सुखवर्तिनी		,,
(९)	,,	अलङ्कारकौस्तुभ	की सुखोधिनी	,,
(१०)	,,	हंसदूत	की	,,
(११)	,,	श्री चैतन्यचरितामृत की		,,
(१२)	,;	श्री प्रेमभक्तिचन्द्रिका की		,,

प्रस्तुत संकल्पकल्पद्रुम ग्रन्थरत्न में १०४ श्लोक हैं उस में से ८८ श्लोक द्वारा श्रीभानुनन्दिनी के निकट निगूढ़ सेवा के लिए व्याकुल भावसे सकातर प्रार्थना विज्ञप्ति है, तत् पश्चात् '८९-९१' में ग्रन्थ कार की गुरु परम्परा, उन सब के सिद्ध देहगत नाम सम्बोधन पूर्वक दैन्य विज्ञप्ति' अनन्तर '९२-९४' में मञ्जुलाली, गुण, रस, भानुमती, लवङ्ग, रूपमञ्जरी प्रभृति के समक्ष आनुगत्य प्रार्थना, ९९ में श्री गिरिराज, '१०० में श्रीराधा कुण्ड, '१०१' योगपीठ, '१०२' में वृन्दादेवी, १०३ में श्रीगोपीश्वर प्रभृति के निकट सङ्कल्प सिद्धि हेतु प्रार्थना है '१०४में' अलभ्यलाभ की सूचना वर्णित है, अन्तिम श्लोक में आपकी उक्ति इसप्रकार है, हे सखे ! श्रीराधा कृष्ण के विलास वारिधि का रसास्वादन ही यदि प्रयोजन हो, और यदि उसको प्राप्त करने के लिए बलवती निष्कपट वासना भी हो, तव अन्यवासना को छोड़कर प्रेमद वृन्दावन का भजन करो । यदि श्री वृन्दावनमेंश्री राधाकृष्ण के विलासवारिधि का रसास्वाद प्राप्त नहीं हुआ हो ओर उसका लोभ का परित्याग करने में भी असमर्थ हो, तवविशेषश्रद्धाके साथ इस सङ्कल्पकल्पद्रुम का आश्रय ग्रहण करो।

मानवीय मनमें अत्यद्भुत शक्ति है, उसका बिनियोग उत्कृष्ट सङ्कल्प में होने पर जगद्वासी प्राणीबृन्द उल्लास के साथ अवस्थान करने में समर्थ होंगे।

हरिदासशास्त्री

❋ श्रीश्री गौरगदाधरौ जयतः ❋

——=❋❋=——

—। ज्ञापिका ।—

	श्लोके	पृष्ठे
निवेदनम्	(१)	१
प्रदोषान्ते अभिसारः	(२–५)	२–४
नक्तलीला	(६-१९)	४-१२
निशान्त्यलीला	(२०–२४)	१२–१५
प्रातर्लीला	(२५–४२)	१५–२३
पूर्वाह्णलीला	(४३)	२४
मध्याह्णलीला	(४४–७०)	२४–३८
अपराह्णलीला	(७१–८७)	३९–४७
प्रदोषलीला	(८८)	४७
ग्रन्थकर्त्तुः प्रार्थना	(८९–१०४)	४८–५६
दण्डात्मिका सेवा		५६–६०

श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुमः

—ઌ*ઌ—

श्री श्री राधामदनगोपालो विजयते

वृन्दावनेश्वरि वयोगुणरूप लीला–
सौभाग्यकेलि--करुणाजलधे ऽवधेहि ।
दासीभवानि सुखयानि सदा सकान्तां
त्वमालीभिः परिवृता मिदमेव याचे ॥१॥

टीका

श्रीश्रीहरिः । राधिकायाश्चरणतलमारभ्य मस्तक पर्य्यन्तं वर्णयित्वा तस्या निकटे प्रार्थनां करोति चतुरधिकशतश्लोकैः ।

हे वृन्दावनेश्वरि । यौवनगुणरूपादिनां जलधि स्वरूपे त्वं अवधेहि, अवधानं कुरु ! अहं तव दासी भवानि दासीभूत्वा सदा कान्तसहितां एवं आलीभिः सखीभिः परिवृतां च त्वां सुखयानि इदमेवाहं याचे ॥ १ ॥

श्रीगदाधर गौराङ्गौ-विजयेताम्
श्री सङ्कल्पकल्पद्रुमः

श्रीभानु नन्दिनोके चरण तलसे आरम्भ कर मस्तक पर्यन्त वर्णन करने के पश्चात् उनके निकट एकसो चारश्लौक द्वारा प्रार्थना करते हैं, हे वृन्दावनेश्वरि, हे वयो जलधे, गुण जलधे, लीला जलधे, 'हे सौभाग्य जलधे, हे केलि जलधे, हे करुणा जलधे, अवधान करो ! मैं कुछ निवेदन करूंगा उसे अवश्य ही सुनना होगा । मैं तुम्हारी दासी

श्रृङ्गारयानिभवतीमभिसारयानि,
वीक्ष्यैव कान्तवदनं परिवृत्य यान्तीं ।
धृत्वाञ्चलेन हरिसन्निधिमानयानि,
संप्राप्य तर्ज्जन सुधां हृषिता भवानि ॥२॥
पादे निपत्य शिरसानुनयानि रुष्टां
तंप्रत्यपाङ्गकलिकामपि चालयानि ।

भवतीं अहं श्रृङ्गारयानि, तदनन्तरं त्वां अभिसारयानि अभिसारानन्तरं कान्तवदनं वीक्ष्य लज्जया परिवृत्य यान्तीं त्वां अञ्चलेन धृत्वा हरिसन्निधिं आनयानि। पश्चात् मांप्रति या तव तर्ज्जन स्वरूपासुधा तां संप्राप्य हर्षयुक्ताहं भवानि ॥ २ ॥

तदनन्तरं रुष्टां त्वां शिरसा पादे निपत्य अनुनयं करवानि। एवं तदैव कृष्णं प्रति त्वयासह अङ्गसङ्गार्थं स्वकीय नयनस्य अपाङ्ग-कलिकामपिचालयानि। तदनन्तरं तत्तस्य कृष्णस्य दोर्द्वयेन

होनेकी अभिलाषी हूँ तुम कान्त के साथ आलि मण्डल से परिवृत होनेपर सेवा कर तुम्हे सुखी करूँगा। यह ही मेरी प्रार्थणा है और कुछभी मैं नहीं चाहता हूँ। १।

(प्रदोषान्तमें अभिसार) मैं तुम्हें विविध विभुषणद्वारा भूषित कर अभिसार कराऊँगा। तुम कान्त वदन को देखकर वामा स्वभाव हेतु लौटकर जाने लगेगी और मैं तुम्हारे वसनाञ्चल ग्रहण कर हरि समीप में तुम्हे ले आऊँगा। पश्चात् मेरे प्रति उक्तकार्य्य के लिए भर्त्सन करने पर उसे मैं सुधा के समान मानकर आनन्दित होऊँगा ॥ २ ॥

अनन्तर तुम्हे रुष्ट देखकर चरणों में गिरकर अनुनय करूँगा एवं तुम्हारे अलक्षितरूपमें कृष्णके प्रति अपाङ्ग द्वारासङ्केतकर उनके

तद्दोर्द्वयेन सहसा परिरम्भयानि,
रोमाञ्च कञ्चुकवतीमवलोकयानि ॥३॥
प्राणप्रिये ! कुसुमतल्पमलङ्कुरु त्व
मित्यच्युतोक्ति-मकरन्द-रसं धयानि ।
मां मुञ्च माधव ! सतीमितिगद्गदार्द्ध-
वाच-स्तवैत्य निकटं हरिमाक्षिपानि ॥४॥
वामामुदस्य निजवक्षसि तेन रुद्धा,
मानन्दवाष्प-तिमितां मुहुरुच्छलन्तीं ।

वाहुद्वयेन परिरम्भयानि आलिङ्गनवतीं करवानि । आलिङ्गनानन्तरं रोमाञ्च स्वरूपेन कञ्चुकेन विशिष्टां तां अवलोकयानि ॥ ३ ॥

"हे प्राणप्रिये ! "कुसुमतल्पं त्वं अलंकुरु" इति त्वां प्रति अच्युतस्य उक्तिस्वरूपं मकरन्द रसं धयाणि पिवाणि । हे माधव ! सतीं मांमुञ्च इति गदगदार्द्ध वाक्ययुक्ताया तव निकटं एत्य हरिं प्रति आक्षेपं करवाणि ॥ ४ ॥

तेन कृष्णेन निजवक्षसि उदस्य उत्क्षिप्य रुद्धां वामां आनन्द वाष्पतिमितां मुहुर्वारम्वारं उच्छलन्तीं व्यस्तालकां स्खलितवेणीं

वाहु युगलद्वारा सहसा तुम्हे परिरम्भण कराऊँगा । आलिङ्गन के अनन्तर रोमाञ्च कञ्चुकवती तुम्हे देखकर नयन सफल करूँगा ॥३ ॥

श्रीकृष्ण तुम्हारे कर धारणकर कहेंगे "हे प्राणप्रिये तुम इस कुसुम शयन को अलङ्कृत करो" मैं तुम्हारी प्रति अच्युत की उक्ति को मकरन्दरस मानकर पान करूँगा । कृष्णकी बातको सुनकर तुम गदगदस्वरसे कहोगी "मैं सती हूँ मुझे छोड़ो" उस वाक्यको सुनकर मैं तुम्हारे निकट आकर श्रीकृष्ण को तिरस्कार करूँगा ॥ ४ ॥

व्यस्तालकांस्खलितवेणीमवद्धनीवीं
त्वां वीक्ष्य साधु जनुरेव कृतार्थयानि ॥५॥
तल्पे मयैव रचिते बहुशिल्प-भाजि,
पौष्पे निवेश्य भवतीं नननेति वाचम् ।
कृष्णं सुखेन रमयन्तमनन्तलीलम्,
वातायनात्तनयनैव निभालयानि ॥६ ॥
स्थित्वा बहिर्व्यजनयन्त्रनिवद्धडोरी-
पानि विकर्षणवशान्मृदु वीजयानि ।

अवद्धनीविं तां वीक्ष्य साधुजन्म एव कृतार्थयानि ॥ ५ ॥

नननेति वाक्ययुक्तां भवतीं सुखेन रमयन्तं अनन्तलोलं कृष्णं मया रचिते अथच बहुशिल्पयुक्ते पुष्पनिर्म्मिततल्पे निवेश्य गवाक्षरन्ध्रे दत्तनयना केवलं अवलोकयानि ॥ ६ ॥

तदनन्तर युवयोः सम्भोग समये वहिः स्थित्वा व्यजनयन्त्रे

वाम्य स्वभाववती तुम्हे श्रीकृष्ण करयुगल द्वाराउठाकर निज वक्ष्यः स्थल में अवरुद्ध करने पर तुम्हारे आनन्दवाष्प पुनः पुनः उच्छलित होगा तुम्हारी अलकावली विपर्य्यस्तहोगी वेणी स्खलित होगी, नीवि अवद्ध होगी, तुम्हारी एतादृश परम मधुर अवस्था को देखकर मैं मेरा जन्मको सम्यक रूपसे सफल मानूँगा । ५ ॥

(नक्तलीला) अनन्तर मेरे द्वारा बहु शिल्पकलासे रचित कुसुम शय्यामें तुम्हें निविष्ट करनेपर तुम पुनः पुनः ना, ना, ना, इस प्रकार वोलोगी ! अनन्तलीला शाली श्रीकृष्ण परमानन्दसे तुम्हारे साथ रमण करेंगे ! मैं वातायन में नयन अर्पण पूर्वक केवल अवलोकन करूँगा एवं नयन सफल करूँगा ॥ ६ ॥

उत्तुङ्ग-केलिकलित-श्रमविन्दुजाल,
मालोपयानि मणितैः स्मितमुद्गीराणि ॥७॥
श्रीरूपमञ्जरि–मुखप्रियकिङ्करीणा
मादेशमेव सततं शिरसा वहानि।
तेनैव हन्त तुलसी परमानुकम्पा–
पात्रीभवानि करवाणि सुखेन सेवां ॥ ८॥

निबद्धा या डोरी सा पानौ यस्या एवम्भूताहं डोर्य्यामावर्षणवशात् मृदुयथास्यादेवं वीजयानि उत्कृष्ट केलिजनित श्रमेण घर्मविन्दु समूह मालोपयानि। मणितानि रतिकूजितानि तैः स्मितं उद्गिराणि ।७।

"डोरीं विहाय पुष्पचयनचन्दनघर्षणादि परिचर्य्यायां त्वं याहि" इति रूपमञ्जरि मुखप्रिय किङ्करीणां आदेशं निरन्तरं अहं शिरसा वहानि। नतु तदानीं दर्शनसुखत्याग-जन्यं असन्तोषं करवाणि तेनैव तादृशाज्ञापालनेनैव तुलस्याः परमानुकम्पा पात्री भवानि सुखेन सेवां अहं करवाणि ॥८॥

इसके बाद तुमदोनों विलास में निमग्न होने पर मैं बाहर रहकर वीजन यन्त्र डोरी आकर्षण पूर्वक मृदु मृदु व्यजन द्वारा तुम दोनों के केलिजनित श्रम बिन्दुओं को विलोप करूँगा एव तुम दोनों के मनित (रतिकुजित) श्रवण कर स्मित उद्गीरण करूँगा ॥ ७ ॥

इस समय श्री रूप मञ्जरी प्रभृति किङ्करीगण मुझे कहेंगीं ! "तुम अब व्यजन डोरी को छोड़कर पुष्प चयन चन्दनघर्षण प्रभृति परिचर्य्या कार्य के लिए गमन करो" में उन सब की आज्ञा को सतत शिरसा वहन करूँगा ! किन्तु तदानीन्तनीय स्वाभीष्ट लोला दर्शन सुखत्याग हेतु असन्तुष्ट नही होऊँगा एतादृश आज्ञा प्रतिपालन हेतु

माल्यानि हारकटकादिमृजा विचित्र-
वर्त्तिः शितांशु-घुसृणागुरुचन्दनादि ।
वीटीर्लवङ्ग खपुरादियुताः सखीभिः
सार्द्धंमुदा विरचयानि कलां प्रकाश्य ॥९॥
त्वां स्रस्तवेष-वसनाभरणां सकान्तां
वीक्ष्य प्रसाधनविधौ द्रुत मुद्यताभिः ।

रूपमञ्जर्य्यादिनां आज्ञां प्राप्य माल्याणि एव हारवलयादिनां माार्ज्जनं एवं मकरि-भङ्गयादि निर्म्माणार्थं तुलीति प्रसिद्धा चित्रवर्त्ति एवं कर्पूर-कुङ्कुमागुरुचन्दनादि लवङ्ग खपुरादि युताः वीटीश्च सखीभिः सह कलां वैदग्धीं प्रकाश्य रचयानि ॥ ९ ॥

कन्दर्प युद्धेन कान्तसहितां स्रस्तवेशवसनाभरणां त्वां वीक्षय प्रसाधनविधो द्रुतमुद्यताभिः श्रीरूपमञ्जर्य्यादिभिः दृष्टाहं तानि माल्य हारादि द्रव्यानि तव सम्मुखं आनयानि तत्समये तासां मयि दृष्टि

तुलसो मञ्जरी की परम अनुकम्पा पात्री बनुंगा एवं परम सुखसे तुम दोनों की प्रेमसेवा करूंगा ॥ ८ ॥

मैं माला गूथुंगी एवं हार कटक वलय प्रभृति अलङ्कारों को साफ करूंगा एवं मकरीभङ्गी प्रभृति की रचना केलिए विचित्र वर्त्ति तुली निर्म्माण करूंगा एवं लवङ्ग खपुर सुपारि प्रभृति द्वारा सखीगण के साथ वैठकर कला प्रकाश पूर्वक ताम्बूल वीटि निर्म्माण करूंगा ॥९॥

कान्त के साथ कन्दर्प युद्धसे स्रस्तवेष वसनआभरण तुम्हें देखकर पुनर्वार शीघ्र भूषित करने की अभिलाषी होकर श्रीरूपमञ्जरी प्रभृति मेरे प्रति दृष्टि निक्षेप करने से ही तत्काल ही मैं माल्य हार

श्रीरूप-रङ्ग-तुलसी-रतिमञ्जरीभिः
दृष्टानयानि तव सम्मुखमेवतानि ।। १० ।।
त्वा माशिखाचरण मूढ़विचित्र वेषां
स्प्रष्टुं पुनश्च धृततृष्णमवेक्ष्य कृष्णं ।
आयान्तमेव विकटभ्रुकुटीविभङ्ग-
हुङ्कृत्युदश्चितमुखी विनिवर्त्तयानि ।।११।।
तत्रेत्य विस्मयवतीं ललितां प्रतीह
साध्वीत्व-कण्टक विनिष्क्रमनार्थमस्याः ।

मात्रेनैव आनयानि नतु कथनाद्यपेक्षा इति स्वस्य चातुर्य्यंध्वनितं।१०।

शिखामारभ्य चरण पर्य्यन्तं प्राप्त विचित्रवेशां त्वां प्रष्टुं पुन धृततृष्णं कृष्णं तन्निकटे आयान्तं अवेक्ष्य अहं निवर्त्तयानि । अहं कीदृशी: मिथ्या रोषेण विकटाभ्यां भ्रुकुटी विभङ्ग हुङ्कृतिभ्यां सह उदश्चितं ऊर्द्धक्षिप्तं मुखं यस्याः सा ।।११।।

परस्पर विहारेण स्रस्तवेष-भूषणौ युवां परिहसितुं आगता ललिता पुर्ववद्वेषादिकं वीक्ष्य युवयोरङ्गसङ्गाभाव शङ्कया विस्मयं

प्रभृति द्रव्य तुम्हारे सामने ले लाऊँगा ।।१०।।

हे वृन्दावनेश्वरि ! तुम शिख से नखतक विचित्र वेष द्वारा भूषित होनेपर श्री कृष्ण सतृष्ण होकर तुम्हें स्पर्श करने केलिए तुम्हारे निकट आनेसे मैं मिथ्या रोषसे विकट भ्रुकुटी विभङ्ग एवं हुँङ्कार द्वारा उत्क्षिप्त मुखी होकर कृष्ण को तिरस्कार करूँगा ।।११।।

तुम दोनोंके परस्पर विहार से वेष स्रस्त होगया है जानकर श्रीललिता तुमदोनों को परिहास करनेकेलिए आकर पूर्ववत् वेषभूषा को देखकर विस्मिता होनेसे अर्थात् श्रीरूप मञ्जरी प्रभृति की वेषरचणा

प्राप्तं न्यसिद्धदयि ! मामियमेव धुर्त्ते-
त्युक्ति हरेः स्वहृदयं रसयानि नित्यं ॥१२॥
निष्क्रम्य कुञ्जभवनाद्विपिने विहर्त्तुं
कान्तैक वाहु परिरब्धतनुं प्रयान्तीं ।
त्वामालीभिः सह कथोपकथा प्रफुल्ल-
वक्त्रामहं व्यजनपाणिरनुप्रयानि ॥१३॥

प्राप्तां एवञ्च तादृश विस्मयवतीं ललितां प्रति कृष्ण आह । हे ललिते ! अस्या राधाया साध्वीत्व कण्टक-निष्क्रमनार्थं प्राप्त मां इयं धूर्त्ता तव किङ्करी न्यसिद्धत् । इयमेवधूर्त्ता ननु राधिका यतस्तस्याः साध्वीत्वस्य कण्टकरूपत्वात् तथाच राधिकायाः सम्मति रस्त्येवेति परिहासोध्वनितः इति हरेरुक्ति मम हृदय स्वरूपं भ्रमरं अहं रसयानि हृदयस्य उक्ति कर्त्तृकरसवत्तेहं प्रयोजिका भवानिरस आस्वादने चुरादे निजन्तोत्तर पुर्णनिच् ॥१२॥

कुञ्जभवनाद्विनिष्क्रम्य विपिने विहर्त्तुं प्रयान्तीं त्वां अनुपश्चात् अहमपिव्यजनपानिः सती प्रयानि । त्वां कीदृशीं कान्तस्य एक वाहुना

कौशल से तुम दोनों की रहोलीला हुई नहीं है जानकर विस्मयाविष्ट होनेपर श्रीकृष्ण ललिता को कहेंगे । "हे ललिते मैं राधा के साध्वीत्व रूप कण्टक निकालनेके लिए आया हूँ तुम्हारी यह धूर्त्ता किङ्करी मुझको क्यों निषेध करती है" ! श्रीकृष्ण की इस उक्तिरूप मधुका आस्वादन निज हृदय मधुकर को कराऊँगा ॥ १२ ॥

इसके वाद कुञ्जभवन से वाहर होकर श्री श्यामसुन्दर के वामभुज द्वारा वद्धतनु होकर सखियों के साथ कथोपकथन से प्रफुल्ल वदन तुम विपिन विहार के लिए गमन करने पर मैं व्यजन पानि

गायानि ते गुणगणां स्तव वर्त्मगम्यं
पुष्पास्तरैर्मृदुलयानि सुगन्धयानि ।
सालीततिः प्रतिपदं सुमनोतिवृष्टिं
स्वामीन्यहं प्रतिदिशं तनवानि वाढ़ं ॥१४॥
प्रेष्ठ-स्वयानि कृत कौसुम-हार काञ्ची
केयूरकुण्डल किरीट विराजिताङ्गीं ।

आलिङ्गिततनुं पुनश्च सखीभिः सह कथनोपकथनें प्रफुल्ल वक्त्रां ॥१३॥

मयैव रचितान् तवगुणगणान् अहं गायानि । एवं तव गम्यं वर्त्म पुष्पास्तरैः करणैः कोमलं करवाणि, तैः पुष्पैः सुगन्धयानिच हे स्वामिनि ! प्रतिपदं सुमनोभिः पुष्पैः करणैः वृष्टिं वाढ़ं अतिशयं यथास्यादेवं आलीतत्या सहाहं प्रतिदिशं तनवानि ॥१४॥

प्रेष्ठेन श्रीकृष्णेन स्वपाणिनाकृतैः कुसुम निर्म्मितहारादिभि भूषिताङ्गीं त्वां पुनरहं स्वकृत कवित्वरूप पुष्पैः भूषयानि एवं

होकर तुम्मारी अनुगमन करूँगा ॥१३॥

हे स्वामिनि ! मैं स्वरचित काव्यद्वारा तुम्हारे गुण समूह का गान करूँगा और जिस पथ में तुम गमन करेगी मैं उसपथ को कुसुम आस्तरण द्वारा मृदुल करूँगा एवं सुगन्धित करूँगा एवं सखियों के साथ उसपथ के सब और पुष्प वर्षा करूँगा ॥१४॥

हे वृन्दावनेश्वरि ! वनविहार के समय तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण अपने हातसे कुसुम चयन कर उससे हार काञ्ची, कुण्डल किरीट निर्म्माण कर तुम्हे सुसज्जित करने से मैं निज कविता कुसुम द्वारा तुम्हे भूषित करूँगा एवं उस कविता को रसिक आलि

त्वां भूषयानि पुनरात्म कवित्व पुष्पैः
रास्वादयानि रसिकालिततीरिमानि ॥१५॥
चन्द्रांशुरूप्य-सलिलै-रवसिक्त-रोध-
स्यश्वत्कदम्ब सुरभा-वलिगीत कीर्त्ति ।
आरब्ध-रासरभसां हरिणा सह त्वां
तत्पाठितैव विदुषी कलयाणि वीणां ॥१६॥
रासं समाप्य दयितेन समं सखीभि
र्विश्रान्तिभाजि नवमालतिका-निकुञ्जे ।

इमानि कवित्वानि रसिक आलीगणान्, आस्वादयानि ॥१५॥

चन्द्रस्यांशु स्वरूपैः रूप्य जलैः सिक्तोऽश्वत् गच्छत्कदम्वस्य सौरभ्य यत्र एवम्भुते एवं सौरभ लोभेन आगतेन भ्रमरेण गीता कृष्णस्य कीर्त्ति यंत्र एवम्भुते च रोधसि पुलिने हरिणा सह आरब्ध रास रभसां त्वां विदुषी अहं तत् पठिता सती वीणां वादयाणि रभसो हर्षः ॥१६॥

रासं समाप्य नव मालतिकालिकुञ्जे दयितेन सखीभिश्च सह

समूह को आस्वादन कराऊँगा ॥१५॥

जहाँपर कदम्व कुसुम सुगन्ध से समागत अलिगण तुम दोनों की कीर्त्ति को गाते हैं और शुभ्र चन्द्रज्योत्स्ना विधौत जिस पुलिन में तुम श्री हरि के साथ रास क्रीड़ा आरम्भ करती हो वहाँपर तुम्हारी शिखाई हुई वीणा वादन शिक्षा में शिक्षित होकर मैं वीणा वादन करूँगा ॥१६॥

हे राधे ! रास क्रीड़ा समापन के अनन्तर सहचरीगण

त्वय्यानयानि रसवत् करकाम्ररम्भा-
द्राक्षादिकानि सरसं परिवेषयानि ॥१७॥
तल्पे सरोजदल क्लृप्तमनङ्गकेलि,
पर्य्याप्तमाप्त कलया रचितं तुलस्यां
त्वां प्रेयसा सह रसादधिशाययानि
ताम्बूल माशायितु मुल्वनमुल्लसानि ॥१८॥
सम्वाहयानि चरणावलकैः स्पृशानि
जिघ्रानि सौरभ- समूढ़-चमत्क्रियाब्धिः ।

विश्रान्तिभाजि त्वयि सत्यां रसयुक्त दाड़िमी फलादिकं आनयानि एवंमनन्तरं सरसं यथास्यात् तथा परिवेषयानि ॥१७॥

कन्दर्पकेलेः पर्य्याप्तिर्यत्र एवम्भूतं अथच सरोजदलेन क्लप्तं आत्मकलया तुलस्या रचितं तल्पं श्रीकृष्णेन सह त्वां रसात् रसं प्राप्य अधिशाययानि । एवं ताम्बूलं भोजयितुं उल्वनं यथास्यात्तथा उल्लास करवाणि ॥१८॥

शयनानन्तरं चरणौ सम्वाहयानि पुन स्तौ स्व अलकैः करणैः स्पृशानि ! एवं चरणद्वयस्य सौरभेन प्राप्तश्चमत्कार

के साथ तुम जव श्रीकृष्ण के सहित नवमालती कुञ्ज में विश्राम करोगी तव मैं सरस अनार आम केला अङ्गूर प्रभृति फल लाकर आनन्द से परिवेषण करूँगा ॥१७॥

हे राधे ! उस समयकलानिपुण तुलसी द्वारा सरोजदल से रचित अनङ्गकेलि पर्य्याप्त शय्यामें प्रियतम के साथ तुम्हेशयन कराऊँगा एव ताम्बूल प्रदान कर अत्यन्त उल्लसित हूँगा ।१८।

हे वृन्दावनेश्वरि ! मैं तुम्हारे चरण युगल सम्वाहन,

अक्षणोर्दधान्युरसिजौ परिरम्भयानि
चुम्बान्यलक्षितमवेक्षित सौकुमार्य्याः ॥१९॥
अन्तेनिश स्तनुतर प्रसृतालकाल्या
ताड़ङ्क हारतति गन्धवहाग्रमुक्ताः ।
प्रेष्ठस्य ते तवच संग्रथिता निभाल्य
तत्रानयानि परमाप्त-सखीः प्रवोध्य ॥२०॥

समुद्रो यया एवम्भूताहं तौ जिघ्रानि । पुर्नबक्षोजद्वये तौ दधानि । एवं मम स्तनद्वयस्य चरण कर्म्मकालिङ्गन कर्त्तृत्वेऽहं प्रयोजिका भवानि । एवं चरणद्वयस्य अवेक्षित सौकुमार्य्याहं अन्यासां अलक्षितं यथास्यादेव चरणौ चुम्बानि ॥१९॥ (निशान्तलीला)

निशः निशाया अन्ते ते तव प्रेष्ठस्य तवच सूक्ष्मतर प्रसरण-युक्तालकश्रेण्या सह ताटङ्काद्या ग्रथिता निभाल्य सर्व्वासां अग्रे उत्थिताहं परमाप्त सखीः प्रवोध्य तत्र आनयानि । अत्रालक शब्देन केश सामस्त ग्रहणं ताटङ्क कुण्डलं नासाया अग्रेस्थिता (वेशर नत) इत्याद्यलङ्काराः कविप्रसिद्धाः ॥२०॥

करूँगा, एवं चमत् कृत होकर दर्शन स्पर्श, सौरभ ग्रहण करूँगा एवं निज नयन युगल में धारण करूँगा उरसिज युगल में स्थापन करूँगा एवं अलक्षित में चुम्बन करूँगा ॥१९॥ (निशान्तलीला)

हे राधे ! रजनी के अवसान में प्रियतम के साथ तुम्हारे प्रसरण शील अलक, केश के साथ ताड़ङ्कहार बेसर आदि को श्लथित देखकर उसस्थान में परमप्रेष्ठ सखीगण को जगाकर लाऊँगा ॥२०॥

ता दर्शयानि सुखसिन्धुषु मज्जयानि
ताभ्यः प्रसादमतुलं सहसाप्नुवानि ।
तन्नूपुरादिरणितै र्गतसान्द्र निद्रां
शय्योत्थितां सचकितां भवतीं भजानि ॥२१॥
हे स्वामिनि ! प्रियसखी-त्रपयाकूलाया
कान्ताङ्गत स्तव वियोक्तमपारयन्त्याः ।

सखीगणान् तत्र आनीय ताः केशेन सह सवश्रातोटङ्काद्या दर्शयानि । दर्शनानन्तरं सुखसिन्धुषु मज्जयानि । तदनन्तरं ताभ्यः सकाशादतुलं प्रसाद सहसा, प्राप्नुवाणि ततः स्तासां सखीनां नूपुरादि शब्दैर्गता निविड़ा निद्रा यस्या एवम्भूतां शय्योत्थितां तथाच लज्वया सचकितां भवतीं अह भजानि ॥२१॥

भजनमेवाह । हे स्वामिनि ! प्रियसखी दर्शन जन्य लज्वया आकुलायाः कान्तस्य अङ्गतः वियोक्तुं अपारयन्त्याः तव अलकेन सह कुण्डलादेर्ग्रन्थिं विचक्षणतया अङ्गुलिकौशलेन उद्ग्रन्थयानि ॥२२॥

मैं परम प्रेष्ठ सखीगण को उस अवस्था दिखाकर सुखसिन्धु में उनसब की निमग्न करूँगा। और सहसा उनसबके निकट से अतुल प्रसाद प्राप्त करूँगा पश्चात् सखीगण के नूपुर आदि की ध्वनि से आप की गाढ़ी निद्रा टुटने पर सचकित भावमें अवस्थित होनेपर मैं तुम्हारी सेवाकरूँगा ॥२१॥

हे स्वामिनि ! तुम प्रियसखीगण को देखकर लज्जित होकर ऊठकर जाने की चेष्टा करोगी, किन्तु हार कुण्डलादि की ग्रन्थि के कारण जाने में असमर्था होनेपर मैं विचक्षणता के साथ

उद्ग्रन्थयान्यलककुण्डलमाल्यमुक्ता-
ग्रन्थिं विचक्षणतयाङ्गुलि-कौशलेन ॥२२॥
नाशाग्रतः श्रुतियुगाच्च वियोजयानि
तत्भूषणं मणिसरांस्तु विसूत्रयानि ।
प्राणार्व्वुदादधिकमेव सदा तवैकं
रोमापि देवि ! कलयानि कृतावधाना ॥२३॥
त्वां सालिमात्म सदनं निभृतं व्रजन्तीं
त्यक्त्वाहरेरनुपथं तदलक्षितेत्य ।

उदग्रन्थने स्वस्य कौशलमेवाह । नासाग्रतः कर्णद्वयाच्च सकाशात् वेशरकुण्डल स्वरूपभूषणं वियोजयानि । नाशातस्तद्भूषणस्य वियोगेनैव केशस्य ग्रन्थि स्वयमेव यास्यति । एवं मणिसरान् विसूत्रयानि त्रोटयानि । ननु लाघवात् केश त्रोटनो नैव निर्व्वाहः । किमर्थमेतादृश प्रयासेन तत्राह । हे देवि, तव एकं रोमापि प्राणार्व्वुदाधिकं अहं कृतावधाना अवलोकयानि ॥२३

कुञ्जादात्मसदनं आलीगणसहितां निभृतं व्रजन्तीं त्वां त्यक्त्वा

अङ्गुली के कौशल से ग्रन्थि मोचन करूँगा ॥२२॥

हे स्वामिनि ! तुम्हारी नासाग्रसे वेसर श्रूतियूगल से कुण्डल खुलुँगा मणि हार समूह को अलग करूँगा। तुम्हारे एक केश को भी मैं मेरी प्राणकोटि से भी अधिकतर मानकर विशेष सावधानता के साथ परिचर्य्या करूँगा ॥२३॥

हे स्वामिनि ! आलिगण के साथ जवतुम आपने घर को निभृत पथ से जाऊगी उस समय मैं तूम्हारे सङ्ग को छोड़ कर

तंखण्डितामनुनयन्तमवेक्षच्चन्द्रां
तत्वृत्तमालिततिसंसदि वर्ण्णयानि ॥२४॥
प्रक्षालयानि वदनं सलिलैः सुगन्धै
र्दन्तान रसालज दलैस्तवधावयानि ।
निर्ण्णेजयानि रसनां तनुहेम पत्र्या
सन्दर्शयानि मुकुरं निपुणं प्रमृज्य ॥२५॥
स्नानाय सूक्ष्म वसनं परिधापयानि
हाराङ्गदाद्यप्यङ्गादवतारयाणि ।

अहं हरिणालक्षिता सती तस्य अनुपथं गत्वा चन्द्रावलीं अनुनयन्तं श्री कृष्णं वीक्ष्य तद्वृत्तान्तं आलिसमूहस्य सभायां वर्ण्णयाणि ॥२४

दन्तान् आम्रदलैः शोधयानि रसनां सूक्ष्म स्वर्ण्ण पत्राणि-र्नेजयानि निपुणं यथास्या देवं प्रमृज्य दर्पणं दर्शयानि । प्रक्षायया निरदनं सलिलैः सुगन्धैः ॥२५॥

स्नानाय सूक्ष्म वसनं परिधापयानि हाराद्यलङ्कारं

अलक्षित पथ से श्रीकृष्ण के पीछे पीछे चलुँगा एव खण्डिता चन्द्रावली की कृष्ण अनुनय कररहे हैं देखकर सव बृत्तान्त आलियों की संसद् में कहूँगा ॥२४॥ —(प्रातर्लीला)

सुगन्धि सलिल द्वारा तुम्हारे वदन प्रक्षालन करूँगा । सुकोमल आम्रपत्र द्वारा दन्त धावन कराऊँगा। सूक्ष्म हेम पत्रिद्वारा रसना मार्जन कराऊँगा। पश्चात् उत्तम रूप से परिस्कृत दर्पण दिखाऊँगा ॥२५॥

स्नान के लिये सूक्ष्म श्वेत बस्त्र पहिनाऊँगा । हार अङ्गद प्रभृति अलङ्कार को खोलकर अरूण वर्ण मनोहर सुगन्धित तेल

अभ्यञ्जयाण्यरुण सौरभहृद्यतैलै
रुद्वर्त्तयानि नवकुंकुम चन्द्रचूर्ण्णैः ॥२६॥
नीरैर्महासुरभिभिः स्नपयानि गात्रा
दम्भांसि सूक्ष्म-वसनै रपसारयानि ।
केशान् जवादगुरुधुम-कुलेन यत्ना
दाशोषयानि रसभेन सुगन्धयानि ॥२७॥
वासो मनोभि रुचितं परिधापयानि
सौवर्ण्णकङ्कतिकया चिकुरान् विशोध्य ।

अभ्यङ्गात् शरीरात् अवतारयाणि अरुण सौरभ हृद्यतैलैः अभ्य-ञ्जयानि अभ्यञ्जयनान्तरं नवकुंकुम कर्पूर चूर्ण्णैरुद्वर्त्तयानि ॥२६॥

महासुरभिभिः नीरैः स्नपयानि । गात्राज्जलानि सूक्ष्म वसनैः दूरीकरवानि । जवात् शिघ्रं अगुरुधूम समूहेन केशान् शोषयानि तेनैव अगुरुधुमेन सुगन्धयानि ॥२७।

अमलैः कुंकुमै विचित्रां वेणीं किदृशीं अग्रेलसन्ती जात इति प्रसिद्धाचमरीका तत्रस्थित मणिसमूहेन भातां ॥२८॥

लगाने वाद नव कुमकुम एवं कपूर चूर्ण द्वारा उद्वर्त्तन करूँगा ॥२६

अनन्तर महासुगन्धि जल द्वारा स्नान कराऊँगा, सूक्ष्मवस्त्र द्वारा शरीर से जल अपसारण करूँगा एवं यत्नपूर्बक केश कलाप को अगुरू धुमसे शुष्क कर आनन्द से उसे सुगन्धित करूँगा ।२७

तत् पश्चात् तुम्हे मनोहर बसन धारण कराऊँगा एवं सुवर्ण रचित कङ्कण द्वारा चिकुर को बिशोधित कर चमरिस्थित मणि एवं विचित्र कुसुम द्वारा मनोहर वेणी गुम्फित करूँगा ॥२८॥

गुम्फानि वेणीममलैः कुसुमैर्विचित्रा
मग्रेलसच्चमरिका मणिजात भातां ॥२८॥
चूड़ामणिं शिरसि मौक्तिकपत्रपास्यां
भाले विचित्र तिलकं च मुदारचय्य ।
अङ्क्त्वाक्षिणी श्रुतियुगं मणिकुण्डलाढ्यं
नासामलङ्कृतवतीं करवाणि देवि ! ॥ २९ ॥

गण्डद्वये मकरिके चिवुके विलिख्य
कस्तुरिकेष्टपृषतं कुचयोश्चचित्रं ।
वाह्वोस्तवाङ्गदयुगं मणिबन्ध युग्मे
चूड़ा मसारकलिताः कलयानि यत्नात् ॥ ३० ॥

शिरसि शिषकुल इति प्रसिद्धा चूड़ामणि मुक्ता निर्म्मितां ललाटीकां पत्रपास्यां आरचय्य ललाटीका इत्यमरः । नेत्रद्वयं अङ्क्त्वा अञ्जनयुक्तं कृत्वा कर्णद्वयं मणिकुण्डलयुक्तं करवानि ।२९

चिवुके कस्तूरिका इष्टं पृषतं विन्दुं मसार इन्द्र नीलमणि स्तेन कलितानिर्म्मिता चूड़ी मणिवन्ध युग्मे कलयानि ॥ ३० ॥

हे राधे - तुम्हारे ललाट में आनन्द के साथ विचित्र तिलक प्रदान करमुक्ता निर्म्मित ललाटीका एवं मस्तक में चूड़ामणि की रचना करूँगा । हे देवि ! नयन द्वय में अञ्जन एवं कर्णद्वय में मणि कुण्डल प्रदान कर नासिका को मुक्ता फल से अलङ्कृत करूँगा ॥२९

हे राधे ! तुम्हारे गण्टद्वय में मकरिका चिवुक में कस्तुरी विन्दु एवंकुच युगल में विचित्र चित्र अलङ्कृत कर वाहुद्धय में अङ्गद एवं मणिबद्ध में इन्द्रनीलमणि निर्मित चूड़ी पहिनाऊँगा ॥३०

पाण्यङ्गुलीः कनकरत्न मयोर्म्मिकाभि
रभ्यर्च्चयानि हृदयं पदकोत्तमेन ।
मुक्तोत कञ्चुलिकयोरसिजौ विचित्र-
माल्येन हार निचयेन च कण्ठ देशं ॥ ३१ ॥
काञ्च्या नितम्व मथहंसक नूपुराभ्यां
पादाम्वुजे दलततिं क्वणदङ्गुरीयैः ।
लाक्षारसै ररुणमप्यनुरञ्जयानि
हे देवि ! तत्तलयुगं कृतपुण्यपुञ्जा ॥ ३२ ॥
अङ्गानि साहजिक सौरभयन्त्यथानि
देव्यर्च्चयानि नवकुङ्कुम चर्च्चयैव ।

पाण्यङ्गुलीः रत्नमयाङ्गुरीभिः रभ्यर्च्चयानि । मुक्तायाग्रथिता कञ्चुलिका तया स्तनौ अर्च्चयानि ॥ ३१ ॥

दलततिं अङ्गुलीश्रेणीं शब्दायमानाङ्गुरीभिः । तयोः पादयोस्तलयुगं साहजिक अरुणमपि कृतपुण्यपुञ्जाहं लाक्षारसैरनु-रञ्जयानि ॥ ३२ ॥

हे श्री राधे !कनक रत्नमय अङ्गुरी द्वारा तुम्हारी अङ्गुलियों को उत्तम पदक द्वारा वक्षस्थल मुक्ता खचित कञ्चुलिका द्वारा स्तन द्वय एवं विचित्र माल्य व हार निचय द्वारा कण्ठदेश को विभूषित करूँगा ॥३१

हे देवि ! कृत पुण्य पुञ्जा मैं तुम्हारे नितम्व प्रदेश को काञ्ची द्वारा हंसक नुपूर पादकटक द्वारा पाद पङ्कजद्वय एवं शब्दायमान अङ्गुरी द्वारा अङ्गुली श्रेणी को सुशोभित करुँगा एवं अरुण सदृशपदतल द्वय को लाक्षारस से रञ्जित करूँगा ॥३२॥

लीलाम्वुजं करतले तव धारयाणि
त्वां दर्शयानि मणिदर्पणमर्पयित्वा ॥ ३३ ॥
सौन्दर्य्यमद्भुतमवेक्ष्य निजं स्वकान्त-
नेत्रालिलोभन मवेत्य विलोलगात्रीं ।
प्राणार्व्वुदेन विधुवर्त्तिकदीपकैश्च
निर्म्मञ्छयानि नयनाम्बु-निमज्जिताङ्गी ॥ ३४ ॥
गोष्ठेश्वरी प्रहितया सह कुन्दवल्ल्या
प्राभातिक प्रियतमाशन साधनाय ।

स्वकान्तस्य नेत्ररूप भ्रमरस्य लोभनं निजं अद्भुतं सौन्दर्य्यं अवेत्य चञ्चल गात्रीं त्वां प्राणार्व्वुदेन कर्पूरवर्त्तिकया निर्म्मित दीपकैः करणैश्च अहं आनन्दाश्रुभिः निमज्जिताङ्गी सती निर्म्मञ्छयानि निर्म्मञ्छनं करवानि ॥ ३४ ॥

प्रियतमस्य श्रीकृष्णस्य प्रातःकालीनभोजन साधनाय यशोदया प्रहितया कुन्दवल्ल्या सह एवं प्रिय सखीभिः समं यान्तीं त्वां अनु-

---

हे देवि ! तुम्हारे श्रीअङ्ग स्वभावतः सुगन्धि होनेपर भी मैं उसे नवकुङ्कुम द्वारा चर्च्चित करूँगा। तुम्हारे हात में लीलापद्म धारण कराऊँगा। एवं मणि दर्पण अर्पण कर स्वरूप दर्शन कराऊँगा॥

उसदर्पण में स्वीय कान्त के नेत्रालि लोभनीय अद्भुत सौन्दर्य को देखकर तुम चञ्चल हो उठोगी; तवमें नयन जल से अभिषिक्त होकर स्वीय प्राणार्व्वुद के साथ कर्पूर की वत्ती से तुम्हारी आरती उत्तारूँगा ॥ ३४ ॥

हे देवि ! तुम प्रियतम कृष्ण के प्रातः कालीन भोजन पाक के

यान्तीं समं प्रियसखीभिरनुप्रयाणि
ताम्बुल सम्पुट मणि व्यजनादि पाणिः ॥ ३५ ॥
गोष्ठेश्वरी-सदनमेत्य पदे प्रणम्य
तस्यास्तदाप्तभविकां त्रपयावृताङ्गीं ।
घ्रातां तया शिरसि तन्नयनाम्बुसिक्तां
त्वां बीक्ष्य तामहमपि प्रणमामि भक्तया ॥ ३६ ॥
मूर्त्तं तपोऽसि वृषभानु कुलस्य भाग्यं
गेहस्य मेऽसि तनयस्य च मे वराङ्गि !।

पश्चादहमपि ताम्बूल सम्पुटादि पाणिः सती गच्छानि ॥ ३५ ॥

तस्या यशोदायाः पदे प्रणम्य तदा आप्तभविकां प्राप्त कुशलां अथच लज्जया समावृताङ्गीं त्वां वीक्ष्य अहमपि तां गोष्ठेश्वरीं भक्त्या प्रणमामि। त्वां पुन कीदृशीं तया यशोदया शिरसि घ्रातां पुनश्च तस्या नयनजलेन सिक्तां ॥ ३६ ॥

यशोदा आह। हे वराङ्गि ! हे राधे ! त्वं वृषभानु कुलस्य

लिये श्रीयशोदा प्रेरित कुन्दलता के प्रिय सखी गण सहित श्रीनन्दालय गमन करोगी। मैं उस समय ताम्बूल सम्पुट मणि व्यजनादि लेकर तुम्हारे अनुगमन करूँगा ॥ ३५ ॥

गोष्ठेश्वरी के सदन में उपस्थित होकर उनके श्रीचरणों में तुम प्रणता होनेसे गोष्ठेश्वरी तुम्हारे मस्तक का घ्राण लेकर तुम्हें आशीर्वाद करेंगी, उस समय तुम श्रीगोष्ठेश्वरी के नयन जल से सिक्त एवं लज्जासे सङ्कुचित होकर रहोगी, यह देखकर में भी उनको परमानन्द से भक्ति पूर्वक प्रणाम करूँगा ॥ ३६ ॥

अयि वराङ्गि ! सुन्दरि ! राधे ! तुम बृषभानु कुल की मूर्त्तिमती स्वरूपा तपस्या एवं मेरे घर की मूर्तिमती सौभाग्य स्वरूपा हो, कारण

नैरुज्यदास्यमृतपाणि रभू र्वरेण
दुर्व्वाससो यदिति तद्वचसाहसानि ॥ ३७ ॥
स्नातानुलिप्त वपुषो दयितस्य तस्य
तात्कालिके मधुरिमन्यति लोलिताक्षीं
स्वामिन्यवेत्य भवतीं क्वचन प्रदेशे
तत्रैव केनच मिषेण समानयानि ॥ ३८ ॥
प्रक्षालयानि चरणौ भवदङ्गतः स्रङ्
माल्यादि पाकरचनानुपयोगि यत्तत् ।

मूर्त्तं यत्तपस्तत् स्वरूपासि एवं मम गेहस्य मूर्त्तं यद्भाग्यं तत्स्वरूपासि एवं ममतनयस्य नैरुज्यदा आरोग्यदा त्वं असि। यस्माद्दुर्व्वास–सोवरेण अमृतपाणिरभूदिति तस्या यशोदाया वचनेन अहं निरुज्य पदेन श्लिष्टार्थ स्मरणात् हसानि ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

चरणौ प्रक्षाल्य पाकरचनोपयोगियत् स्रङ्माल्यादि अलंकरणं तत् भवदङ्गतः तवाङ्गात् अहं उत्तारयानि तदैवपूर्व्वकृतमत् चातुर्य्य वशेन

श्री दुर्वासाऋषि के वर से तुम अमृत पानि हो, अतएव मेरे तनय के लिये नीरोग प्रदात्री हो, वहाँपर तुम्हारे प्रति श्री यशोदा के उक्त वाक्य श्रवण कर मैं हसूँगा ॥ ३७ ॥

हे स्वामिनि ! कृष्ण उस समग स्नान अनुलेपन भूषण आदि से अतिशय माधुर्य मण्डित होने पर तुम्हारे नयन श्रीकृष्ण दर्शन के के लिए अति चञ्चल हो उठेंगे, मैं उस समय नन्दालय के किसी निभृत कक्षमें किसी छल से तुम्हें ले आऊँगा ॥ ३८ ॥

अनन्तर चरणद्वय प्रक्षालन पूर्वक पाक शाला के अनुपयोगी मणिमाला व पुष्पमालादि आभरण,–तुम्हारे अङ्ग से उतारूँगा, उस

उत्तारयाणि तदिदं तु तवाऽस्त्ववतित्वद्
वाचोल्लसानि विकसन्मधुमाधवीव ॥ ३८ ॥
पक्त्वास्थितां मधुरपायस शाकसूप-
भाजि-प्रभृत्यमृतनिन्दि चतुर्व्विधान्नं ।
त्वां लोकयानि नननेति मुहुर्व्वदन्तीं
गोष्ठेशयापि परिवेषयितुं निदिष्टां ॥ ४० ॥
तृप्त्युत्थितां प्रियतमाङ्गरुचिं धयन्त्या
वातायनार्पितदृशः सहसोल्लसन्त्याः ।

श्रीकृष्ण माधुर्य्य दर्शनाज्जातानन्दाया स्तव रे किङ्करि ! इदं भूषणादिकं तवास्तु इति वचसा अलं उल्लसानि तत्र दृष्टान्तः वसन्तकालीन विकास–युक्त माधवी इव ॥ ३९ ॥

मधुरपायसादि चतुर्व्विधान्नः पक्त्वास्थितां अथच गोष्ठे शया परिवेशयितुं निदिष्टां पश्चात् नननेति मुहुर्व्वदन्तीं त्वां अवलोकयानि

प्रियतमस्य श्रीकृष्णस्य भोजन जन्य तृप्त्युत्थितां अङ्गकान्तिं

समय मेरी पूर्वकृत चातुरी से श्रीकृष्ण दर्शन जनित आनन्द हेतु हे किङ्करी से आभरणादि मेने तुमको दिया, तुम इसे ले लो तुम्हारे यह वाक्य सुनकर मैं वसन्त में विकसित माधवी लतिका को भाँति उल्लसित हो जाऊँगा ॥ ३९ ॥

मधुर पायस, शाक, सूप भाजि प्रभृति अमृत के समान चतुर्विध अन्न पाक करने के पश्चात् विश्राम करने से गोष्ठेश्वरी तुम्हें परि–वेषण करने के लिए आदेश करेंगी, तव ना, ना, ना, इस प्रकार भाषमाणा तुम्हें दर्शन करूँगा ॥ ४० ॥

हे बृन्दावनेश्वरि ! तुम भोजन से परितृप्त प्रियतम श्रीकृष्ण

आनन्दज द्‌युतितरङ्ग भरे मनोज-
मञ्जुकृते तव मनो मम मज्जयानि ॥ ४१ ॥
राधे ! तवैव गृह मेतदहं च जाते !
सूनोः शुभे ! किमपरां भवती मवैमि ।
तद्‌भुङ्ख सम्मुखमिति ब्रजपा गिरात्वत्
वक्त्रेस्मितं स्वहृदयं रसयानि नित्यं ॥ ४२ ॥

पिबन्त्या स्तव श्रीकृष्ण दर्शनोत्थानन्द जन्य कान्ति तरङ्गातिशये मम मनो मज्जयानि। तव किदृश्याः श्रीकृष्णस्य दर्शनार्थं वातायने गवाक्षेऽर्पिते दृशौ यस्याः तवद्‌युति तरङ्गे किदृशे मनोजेन कन्दर्पेण मनोज्ञीकृते ॥ ४१ ॥

हे जाते ! हे पुत्रि ! हे राधे ! हे शुभे ! एतदगृहं अहं च तवैव सूनोः श्रीकृष्णात् सकासात् त्वां अपरां भिन्नां कि अवैमि जानामि ? तत्तस्मात् मम सन्मुख मेव त्वं भुङ्क्ष्व इति यशोदाया गिरा ज्ञातं यत् तववक्त्रस्मितं तेन मम हृदयं नित्यं अहं रसयानि। अत्र सूनोरिति श्लिष्टार्थ स्मरणात् स्मितं जातं यद्‌यथा सूनोः किं अपरां भवतीं अवैम नहि जानामि किन्तु तदीयामेव जानामि ॥ ४२ ॥

की अङ्गकान्ति का दर्शन करते करते सहसा उल्लसिता होकर गवाक्ष में नेत्रापंण करने से तुम्हारे कन्दर्पकृत आनन्द जनित कान्ति तरङ्ग में मन को मग्न करूँगा ॥ ४१ ॥

हे राधे ! हे मङ्गल स्वरूपे। हे पुत्रि ! यह गृह तुम्हारा है, एवं मैं भी तुम्हारी हूँ। मैं मेरापुत्र से तुम्हें भिन्न नहीं जानती हूँ। व्रज राज्ञी का वह वचन सुनकर तुम्हारे मुख में मृदु हास्य का उदय होगा। मैं निज चित्त में उसका आस्वादन करूँगा ॥ ४२ ॥

यान्तं वनाय सखिभिः सममात्मकान्तं
पित्रादिभिः सरुदितै रनुगम्यमानं ।
वीक्ष्याप्त गौरवगेहां दिननाथ-पूजा
व्याजेन लब्धगहनां भवतीं भजानि ॥ ४३ ॥
कान्तं विलोक्य कुसुमावचये प्रवृत्ता-
मादाय पत्र पुटीका मनुयान्यहंत्वां ।

सुवलादि सखिभिः समं वनाय यान्तं एवं रोदन युक्तैः पित्रादिभिरनुगम्यमानं आत्मकान्तं श्रीकृष्णं वीक्ष्य प्राप्त गुरुजन सम्बन्धि गेहं यया एवम्भूतां अथच गृह गमनानन्तरं सूर्य्य पूजाच्छलेन लब्धवतां भवतीं भजानि ॥ ४३ ॥

वनेगत्वा श्रीकृष्णं विलोक्य कुशुमावचयने प्रवृतां त्वां पुष्पस्याधारभूतां पत्रनिर्म्मित पुटिकां आदाय अहं अनुयानि । तदनन्तरं का तस्करी मम पुष्पं चिनोति इति तस्य श्रीकृष्णस्य वचसा करणेन हर्षजाता न कापीति तव उक्ति स्तयासह श्रीकृष्णे अर्पित दृशं भवतीं

पूर्वाह्न लीला

अनन्तर पूर्वाह्न काल में सखागण के साथ श्री कृष्ण वन गमन करने पर पित्रादि गुरुजन बृन्द रो रो कर श्रीकृष्ण का अनुगमन करेंगे वह सब देखकर तुम अपने घर पर वापिस आजाऊगी, अनन्तर सूर्य पूजा के छल से वन गमन करने पर मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा ॥

मध्याह्न लीला

वन में जाकर कान्त को देखकर पुष्प चयन में प्रबृत्त होनेपर में पत्र निर्मित पुष्पाधार लेकर अनुगमन करूँगा, कृष्ण कहेंगे " यह तस्करी कोन है ?" इस के उत्तर में 'कोई नहीं कोई नहीं' इस

का तस्करीयमिति तद्वचसा न कापी
त्युक्ता सहार्पित दृशं भवतीं स्मराणि ॥ ४४ ॥
पुष्पाणि दर्शय कियन्ति हृतानि चौरी
त्युक्तचैव पुष्पपुटिका मपिगोपयानि ।
तद्वीक्ष्य हन्त ममकक्षतले क्षिपन्तं
पाणिं वलात्तमभिमृश्य भवानिदुना ॥ ४५ ॥
रक्षाद्यदेवि ! कृपया निजदासिकांमा
मित्युच्च कातरगिरा शरणं व्रजानि ।
किं धूर्त्त ! दुःखयसि मज्जन मित्यमुष्य
वाहुं करेण तुदतीं भवतीं श्रयानि ॥ ४६ ॥

भजानि ॥ ४४ ॥

हे चौरि ! राधे ! मम कियन्ति पुष्पाणित्वया हृतानि तद्दर्शय इति कृष्णस्य उक्त्यैव अहं पुष्प पुटीकां गोपयानि । तदेगोपनं वीक्ष्य गृहीतुं मम कक्षतले हन्त बलात् पाणिं क्षिपन्तं त्वं कृष्णं अभिमृष्य ज्ञात्वा अहं दुःखिता भवानि ॥ ४५ ॥

इति उच्चैः कातरवाक्येन शरणं व्रजानि । तदनन्तरं राधिकाह

प्रकार कहते कहते कृष्ण के प्रति दृष्टि अर्पण कारिणी तुम्हें दर्शन करूँगा ॥ ४४ ॥

कृष्ण कहेंगे, कितने फूलों की चोरी तुमने की है ? दिखाओ" तब में पुष्पाधार का गोपन करूँगा, उसे देखकर श्रीकृष्ण बल पूर्वक मेरे कक्ष में हस्तक्षेप करेंगे। उससे मैं दुःखित हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥

अयि देवि मैं तुम्हारी दासी हूँ मुझे रक्षा करो ! इस प्रकार कातर वाक्य से तुम्हारे शरण लेनेपर यह धूर्त ! क्यों मेरे जन को

त्यक्स्वैव मांभवदुर कवचं विखयण्ड्य
प्राप्तां श्रजं तवगलात् स्वगले निधाय ।
पुष्पानि चौरि ! मम किं तवकण्ठहेतो
स्तत् कण्ठमेव सुभृशं परिपीड़यानि ॥ ४७ ॥

राजास्ति कन्दरतले चल तत्रधूर्त्ते !
तस्याज्ञयैव सहसाच विवस्त्रयिष्ये ।

हे धूर्त्त ! कृष्ण ! कथं मज्जनं दुःखयसि इत्युक्त्वा अमुस्य श्रीकृष्णस्य वाहुं स्वकरेण तुदतीं अहं आश्रयाणि तुद व्यथने धातु ॥ ४६ ॥

तदनन्तरं श्रीकृष्णः मां त्यक्त्वा तव उरः कवच कञ्चुलिकां विखण्ड्य प्राप्तां मालां तवगलात् स्वगले निधाय आह हे चौरि ! मम पुष्पाणि किं तव कण्ठस्य माल्य हेतुः भवति तत्तस्मात् तवकण्ठ मेवाहं अतिशयेन परिपीड़यानि ॥ ४७ ॥

हे धुर्त्ते ! हे राधे ! कन्दर्पः महाराजा कन्दरे अस्ति तत्र चल । तस्य राजाज्ञयैव त्वां सहसा विवस्त्रयिष्ये। तदनन्तरं विबस्त्रां

क्लेश देते हो" इस प्रकार कहकर अपने हाथों से कृष्ण के हाथ को रोकोगी, में इस प्रकार भावयुक्त तुम्हारी शरण ग्रहण करूँगा ।४६।

इस से श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर श्री कृष्ण तुम्हारे वक्षः स्थलस्थ कञ्चुली का खण्डन पूर्वक तुम्हारे कण्ठस्थित पुष्प माला अपने गले में धारण कर कहेगा, "अयि तस्करी ! येसव पुष्प क्या तुम्हारी माला के लिए है ? देखो ! में तुम्हारे कण्ठदेश का पीड़न बल पूर्वक करता हूँ ॥ ४७

हे राधे ! हे धुर्ते ! कन्दरा में एक राजा है, वहाँ चलो ; उनकी आज्ञा से तुम्हें विवस्त्रा करूँगा, पश्चात् राजा तुम्हें विवस्त्रा

तां वीक्ष्य हृष्यति सचेन्निजदिव्यमुक्ता-
मालां प्रदास्यति ललाटतटेमदीये ।। ४८ ।।

दोषो न ते व्रजपते स्तनयोऽसितस्य
दुष्टस्य यन्नरपतेः खलुसेवकोऽभूः ।
तद्बुद्धिरीदृगभवन्मम चात्र साध्व्या
भाले किमेतदभवल्लिखितं विधात्रा ।।४६।।

इत्यादि वाङ्मय सुधा महहृश्रुतिभ्यां
स्वाभ्यां धयान्युदरपूरमथेक्षणाभ्यां ।

त्वां वीक्ष्य सराजा यदि हृष्यति तदा स्वकीय दिव्यमुक्तामालां मदीये ललाट तटे दास्यति । एतेन कन्दरतले गते सति इति ध्वनितं तत्र राधया सर कन्दर्पयुद्धे न जात श्रम विन्दुरेव मुक्ता माला स्वरूपो भविष्यतीति परिहासो ध्वनितं ।। ४८ ।।

व्रजपते स्तनयोऽपि भूत्वा दृष्टस्य नरपतेः कन्दर्पस्ययतस्त्वं सेवको ऽभूः । अतएव तादृश विरुद्धभावस्य तत्रदोषो नास्ति किन्तु दुष्ट सङ्गस्यैव दोषः । तस्मात् दुष्टसङ्गात् एव तव बुद्धिः ईदृक् भवति साध्व्याः ममच कपाले किं विधात्रा एतल्लिखितं अभवत् । ४६

देखकर मेरे प्रति प्रसन्न होकर दिव्य मुक्ता माला मुझे प्रदान करेगा ।। ४८ ।।

जव तुम व्रजेन्द्र नन्दन होकर भी दुष्ट कन्दर्प नरपति का सेवक हुए हो, तव ही तुम्हारी ऐसी विरुद्धवुद्धिहुई है, इश में तुम्हारा दोष नही हैं। दुष्ट सङ्ग का ही प्रभाव है। किन्तु मैं तो साध्वी हूँ। मेरे ललाट में भी विधाता ने इस प्रकार ही लिखा है ।४६

रूपामृतं तव सकान्त तया विलास-
सिधुञ्च देवि ! वितराम्यथमादयानि ॥५०॥
प्रेष्ठे सरस्यभिनवां कुसुमै र्विचित्रां
हिन्दोलिकां प्रियतमेन सहाधिरूढ़ां ।
त्वां दोलयान्यथकिराणि परागराजि
र्गायानि चारुमहती मपिवादयानि ॥ ५१ ॥
वृन्दावने सुरमहीरुह योगपीठे,
सिंहासने स्वरमणेन विराजमानां ।

इत्यादि युवयोर्वाक्यमय सुधां अहृह मदीय कर्णाभ्यां उदरपुरं यथास्यात्तथा धयानि । अथ ईक्षणाभ्यां नेत्राभ्यां युवयोरूपामृतं कान्त सहितेन तव विलासरूप मधु च हे देवि ! अहं वितराणि ददानि । अथ मधुपान द्वारा नेत्र द्वयं मादयानि हर्षाणि ॥ ५० ॥

प्रियसरसि राधाकुण्ड अभिनवां अथच कुसुमै र्विचित्रां हिन्दोलिकां प्रियतमेन सह अधिरूढ़ां त्वां अहं दोलयानि । अथ पराग श्रेणीरपि तदानीं विकिराणि । एवं तव गुणान्यपि अहं गायानि ।

हे देवि ! में अतिशय आनन्द से उक्त वाङ्मय सुधापान कर्ण युगल को कराऊँगा, अनन्तर कान्त के साथ तुम्हारा विलास सुधा का आस्वादन नयन द्वय को कराकर आनन्द में मग्न हो जाऊँगा ५०

प्रिय सरोवर भी राधाकुण्ड में पुष्प निर्म्मित अभिनव विचित्र हिन्दोला में प्रियतम के साथ आरोहण करने पर मैं तुम्हें झुलाऊँगा परागो की वर्षा करूँगा गान करूँगा, एवं वीणा वादन करूँगा ।५१

ते देवि ! श्री बृन्दावन के कल्पबृक्ष के मूलमें योगपीठस्थ सिंहासन में श्रीकृष्ण के साथ तुम विराजित होने से मैं पाद्य, अर्घ,

पाद्यार्घ्यं धूप विधुदीप चतुर्व्विधान्न-
स्रग्भुषणादिभिरहं परिपूजयानि ॥ ५२ ॥
गोवर्द्धने मधुवनेषु मधूत्सवेन
विद्राविताऽत्रपसखी शतवाहिनीकां ।
पिष्टातयुद्ध मनुकान्त जयाय यान्तीं
त्वां ग्राहयाणि नव जातुष कूपिकालीः ॥५३॥
अग्रेस्थितोऽस्मितव निश्चय एव वक्ष
उद्घाट्य कन्दुकचयं क्षिपचेद्बलिष्ठा ।

एवं चारु महतीं वीणां वादयानि ॥५१ ॥ ५२॥

गोवर्द्धने वसन्तयुक्त बनेषु आविर गुलाल इति प्रसिद्धस्य पिष्टा तस्य युद्धे कान्तं जेतुं गच्छतीं त्वां पिष्टात पूर्ण नव जातुष कूपिका-श्रेणीर्युद्ध्व समये अहं ग्राहयाणि कीदृशी मधूत्सवेन होलिकोत्सवेन विद्राविता लज्जा यासां एवम्भूत सखीगणरूप सेनानी सहितां ॥ ५३।

पिष्टात युद्ध समये श्रीकृष्ण आह। स्व वक्षषः पीताम्बरं उद्धाट्य निश्चलः सन् तव अग्रेऽहं स्थितोऽस्मि तस्मात्त्वं वलिष्ठाचेत् पुष्पनिर्म्मितकन्दुकसमूहं मयि क्षिप, अथ हे राधे तव हृदि यदि

कर्पूर, दीप चतुर्विध अन्न सग् भूषणादि के द्वारा सर्वप्रकार तुम दोनों की सेवा करूँगा ॥ ५२ ॥

हे श्री राधे ! तुम गोवर्द्धनस्थ वसन्त ऋतुवन में बसन्तोत्सव में लज्जारहित सखी शातवाहिनी से युक्त होकर कान्त जय की अभिलाष से पिचकारी युद्धमें प्रबृत्त होने पर मैं तुम्हें लाक्षा निर्म्मित नवीन कुम्‌ कुम की गुलिका प्रदान करूँगा ॥ ५३ ॥

श्री कृष्ण कहेंगे मैं तुम्हारे सामने उद्घाटित वक्ष में निश्चल

उद्घाट्य कञ्चुक मुरः किलदर्शयन्ती
त्वञ्चापि तिष्ठ यदि ते हृदि वीरतास्ति ।।५४
यत्कत्थ्यसे तदयमेव तव स्वभावो
यत्पूर्व्वं जन्मनि भवानजितः किलासीत् ।
मिथ्यैव तत् यदिह भोः कतिशो जितोऽभूः
मत्किङ्करीभिरपि तद्विगतत्रपोऽसि ।। ५५ ।।
इत्येवमुत् पुलकिनी कलयानि वाचः
सिञ्जान कङ्कण झनत्कृत दुन्दुभीकं ।

वीरतास्ति तदा स्ववक्षषः कञ्चुकं उद्घाट्य उरः दर्शयन्ती सती त्वमपि ममाग्रे किल तिष्ठ ।। ५४ ।।

श्रीराधिका प्रत्युत्तरमाह । हे कृष्ण यत्त्वं कथ्यसे आत्मश्लाघां कुरुषे तत्तव अयं स्वभावः किन्तु पोर्ण्णमासी मुखात् मयाश्रुतं यत्पूर्व्वं जन्मनि भवान् अजित नामा आसीत तत्तुकिल मिथ्यैव यद्यस्मात् इहैव मत् किङ्करीभिः कतिवारान् भवान् जितो अभूत् तत्तस्मात् त्वं विगत लज्जोऽसि ।। ५५ ।।

युवयोरित्येवं वाच अहं उत्पुलकिनी सतो कलयानि शृणवानि

रूप में स्थित हूँ, सामर्थ्य हो तो मेरे सामने उद्घाटित वक्ष होकर अवस्थान करो ! ५४

श्रीकृष्ण के वाक्य को सुनकर तुम कहोगी, तुम वीरता के लिए गर्वकर रहे हो यह तुम्हारे स्वभाव के अनुरूप ही है । पौर्णमासी भी कहा करती है कि तुम्हारा नाम पिछले जनम में अजित था यह कथन सम्पूर्ण मित्थ्या है, क्यों कि मेरी किङ्करियों से तुम कितने वार पराजित हो चूके हो; अवतुम निर्लज्ज होकर इस प्रकार गर्व कर रहे हो ।।५५।।

युद्धं मुखामुखि रदारदि चारुवाहु
वाहव्यमन्द नखरानखरि स्तुवानि ॥५६ ॥
कस्याञ्चिदद्रि नृपदीव्यदुपत्यकायां
सप्रेयसि त्वयि सखीशत वेष्टितायां
विश्रान्तिभाजि वनदेवतयोपनीता-
नीष्टानिसीधु चषकानि पुरदधानि ॥ ५७ ॥
हाकिं कि किं ध धरणी घु-घु धूर्णतीयं
धा-धा-ध धावति भयाद् वि-वि वृक्ष पुञ्जः ।

एवं अव्यक्त शब्दं कुर्व्वतः कङ्कणस्य झनत्कार शब्द एवं दुन्दभिवाद्य यत्र एवम्भूत युवयोयुद्धं अहं स्तवानि । युद्धं कीदृशं मुखेन मुखेन प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्त मित्यर्थे मुखामुखि एवं रदारदीत्यपिवोध्यं ।५६

अद्रि नृपस्य गोवर्द्धनस्य दिव्यन्ती या उपत्यका निकट वर्त्तिनी भूमि तस्यां कस्याञ्चित् कुट्टिमायां सप्रेयसि श्रीकृष्ण सहितायां सखी शत वेष्टितायां त्वयि वनदेवताया उपनीतानि इष्टानि सिधु चषकानि मधुयुक्त पात्रानि तव अग्रे दधानि ॥ ५७ ॥

मधुपानाज्जातं श्रीराधिकाया वाक्यस्खलनादिकं माह । हाकिं धरणी घूर्णति इति वक्तव्ये मधुपान जन्य मत्ततयाकिं किमित्यादि

उक्त वाक्यालाप को मैं अत्यन्त उत्पुलकित होकर श्रवण करूँगा । नूपुर किङ्किणी कङ्कण झनत् कार रूप दुन्दु भी निवाद्य के साथ तुम दोनों में मुखामुखि, रदारदि, हस्ता हस्ति, एवं नखरा नखरि लड़ाई होगी, मैं उस युद्ध की स्तुति करूँगा ॥ ५६ ॥

गिरिराज गोवर्द्धन के उज्ज्वल किसी उपत्यका में श्रीकृष्ण के साथ सखीशत वेष्टित होकर तुम विश्राम करने पर मैं बन देवता द्वारा आनीत मधु पात्र समूह को तुम्हारे सामने रखूँगा ॥ ५७

भी-भी-भि भीरुरहमत्र कथं जि-जीवा
म्येवं लगिष्यसि सदा दयितस्य कण्ठे ।।५८।।
त्वत्स्वामिनी प्रलपतीयमिमांगदेन
हीनां करोमि कलयात्र निरेहि नेतः ।
इत्युक्ति सीधुरसतर्पित हृत्तदैव
निष्क्रम्य जाल वितती विदधानि नेत्रे ।।५९।।
घ्राणाक्षि कर्ण्णवदने जलसेक-तत्या
कृष्णस्तया जित इतः सहसा निमज्ज्य ।

निरर्थक शव्द प्रयोगो वोध्यः । एवं धावति भयाद्वृक्ष पुञ्ज इति वक्तव्ये धाधा इत्यादि । एवं आकाशो मम शिरसि पतत्यतोऽहं कथं जीवामीत्युक्त्वा श्रीकृष्णस्य कण्ठे यदात्वं लगिष्यसि तदैव निष्क्रम्येति परेणान्वयः ।। ५८ ।।

श्रीकृष्ण आह । हे किङ्करि इयं त्वत् स्वामिनी राधिका रोग जन्य प्रलापं करोति अत एनां गदेन रोगेन हीनां करोमि तस्मात् त्वं अत्र स्थित्वैव कलय-पश्य किन्तु इतः सकाशा न्न निरेहि न गच्छ। इति श्रीकृष्णस्योक्तिरूप मधुरसेन तर्पित हृदयाहं तदेव तस्मात् लता-जाल वितती नेत्रे दधानि ।। ५९ ।।

ततः जल विहार मेवाह । नासाक्षिकर्ण्ण वदनेषु जलसेक समुहेन करणेन त्वया पराजितः श्रीकृष्णः सरसा जलमध्ये निमज्य

तुम मधू मत्त होकर स्खलित वाक्य से कहीगी—हाय ! धरणी घुम रही है ! वृक्षपुन्ज मय से दौड़ रहे है, मैं वहुत डर गई हूँ । अव मैं कैसे जीऊँ ऐसा कह कर प्रियतम के कण्ठ में गूँथ जायगी ।। ५८ ।।

तव कृष्ण मुझे कहेंगे तुम्हारी स्वामिनी मधुमत्त होकर प्रलाप

ग्राहोभवन् सखलु यत्कुरुते स्म तत्तु
वेदान्यहं तवमुखाम्वुज मेववीक्ष्य ॥ ६० ॥
अभ्यञ्जयानिससखीदयितां सहालि
स्त्वां स्नापयानि वसनाभरणैर्विचित्रं ।
शृङ्गारयाणि मणिमन्दिर पुष्पतल्पे
संभोजयानि करकाद्यथ शाययानि ॥ ६१ ॥
वाणीर कुञ्ज इह तिष्ठति ! देवी
निह्नुत्य मृग्यसि कथं तदितः परत्र ।

कुम्भीरो भवन् सन् तव अङ्गे यत्कुरुतेस्म तत्तुतव मुखाम्वुजं वीक्ष्याहं वेदानि ॥ ६० ॥।

सखीश्रीकृष्णाभ्यां सहितां त्वां तैलादिना सहालिरहं अभ्यञ्जनं करवानि तदनन्तरं स्नापयानिच । एवं वस्त्राभरणेन विचित्रं यथास्या देवं शृङ्गारयाणि । तदनन्तरं मणिमन्दिर मध्ये पुष्प शय्यायां स्थापयित्वा डारिमीफलादिकं संभोजयानि अथ शाययानि ॥ ६१ ॥

तत्रादौ शयनादुत्थाप्य कौतुक वशात् वाणीरकुञ्जे निह्नुत्य स्थितां राधां अन्वेषयन्तं श्रीकृष्णं किङ्करी परिहसति । हे कृष्ण !

कर रही है, इस को कलाविलास से रोग मुक्त करूँगा, तुम यहा से प्रस्थान न करने से अच्छा होगा मैं इस उक्ति से कथामृत रस तर्पित हृदय होकर लतारन्ध्र में नयन अर्पण करूँगा, एवं विहार आनन्द दर्शन करूँगा ॥ ६० ॥

सखीगणों के साथ मैं तुम्हें अभ्यञ्जन (तैलमर्दन) एवं स्नान कराऊँगा । विचित्र वसन आभरण द्वारा मैं तुम्हें भूषित करूँगा । अनन्तर भोजन कराकर मणिमन्दिरस्थ पुल्प तल्पामें शयन कराऊँगा

लुका चोरी खेल में कृष्ण तुम्हें ढूँढ़ने, लगेगा, मैं कहूँगा हे

सत्यामिमां ममगिरंतमविश्वसन्तं
यान्तं मति प्रदर्श्य भवती हर्षयाणि ॥ ६२ ॥
स्वामिन्यमूत्रहरिरस्ति कदम्व कुञ्जे
निह्नुत्य मृग्यसि कथं तदितः परत्र ।
सत्यामिमां ममगिरं खलुविश्वसत्याः
पाणौ जयं तव नयानि तमाप्नुवत्याः ॥ ६३ ॥
राधे ! जिताच जयिनीच पणं न दातु
माादातुमप्यहह चुम्वनमीशिषे त्वं ।

पाणिछिटाकीति प्रसिद्धस्य वाणीर वृक्षस्य कुञ्जे निह्नता देवी तिष्ठति तस्मात् त्वं इतः परत्र कथं मृग्यसि इति सत्यामपि मम इमां गिरं मयि राधिकापक्षत्व ज्ञानादविश्वसन्तं श्रीकृष्णं अन्य कुञ्जे यान्तं प्रदर्श्य भवतीं हर्षयुक्तां करवानि ॥ ६२ ॥

हे स्वामिनि ! अमुक कदम्व कुञ्जे हरि निह्नुत्य अस्ति तस्मादन्यत्र कथं मृग्यसि इति सत्यां ममगिरं स्वपक्षत्वात् विश्वसत्या अपि तत् एव तं श्रीकृष्णं प्राप्तवत्याः तव पाणौजयं प्रापयानि ॥६३॥

कृष्ण देवो, वानीर कुञ्ज में छिपी हुई है। अन्यत्र क्यों ढूँढ़ रहे हो. में सत्य कहने परभी कृष्ण उसमें विश्वास नहीं करेगा, और अन्यत्र ढूँढ़ने में लग जायगा। में तुम्हें उस कृत्य को दिखाकर आनन्दित करूँगा ॥ ६२ ॥

पश्चात् तुम्हें मैं कहूँगा, हे स्वामिनि ! हरि कदम्व कुञ्ज में लुकायित हे, अतएव अन्यत्र क्यों अन्येषण कर रही हो ? कथन सत्य जान कर विश्वास करोगी, और खेल में तुम्हारी विजय होगी ॥ ६३ ॥

नाश्लेषचुम्वमधुराधरपानतोऽन्यं
द्युते ग्लहं रसविदः प्रवरं वदन्ति ॥ ६४ ॥
गोवर्द्धनेऽत्र मम कापि सखी पुलिन्द-
कन्यास्ति भृङ्ग्यतितरां निपुणेदृशेर्थे ।
मद्ग्राह्यदेय पणवस्तुनि मन्नियुक्ता
सा ते गृहीष्यतिच दास्यति चोप गूहं ॥ ६५ ॥

द्युतकृतपणं श्रीकृष्ण आह । हे राधे मया पराजिता चेच्चुम्वन रूपं पनं दातुं एवं कदाचित् त्वं जयिनी चेत् मत्तः सकाशात् चुम्वन रूपं पनं गृहितुं त्वं न इशिषे न समर्थासि ननु चुम्वनादिकं विना अन्य देवपणमस्तु तत्राह । आलिङ्गनचुम्वनाधरपानादन्यं द्युत क्रीड़ायां पनंरसविदो जनाः प्रवरं श्रेष्ठं न वदन्ति ॥ ६४ ॥

श्रीराधिका प्रत्युत्तरमाह । गोवर्द्धने मम कापि सखी भृङ्गी नाम्नी पुलिन्दकन्यास्ति सातु ईदृश चुम्वनादान प्रदानेअति निपुणा तस्मात् सैव ममग्राह्य वस्तुनि देयवस्तुनिच मन्नियुक्ता सती ते तव उपगुहं आलिङ्गनादिकं गृहिष्यति दास्यतिच ॥ ६५ ॥

अनन्तर पाशा क्रीड़ाके समय श्रीकृष्ण कहेगा। हे राधे ! पाशा खेल में मुख चुम्बन पण होना ठीक है । तुम पराजित होने पर जयी मुझे उक्त चुम्वन पण मुझे दान करोगो, और तुम जयी होने पर पराजित हम से उक्त पण ग्रहण करना । इस में असम्मति की क्या है ? देखो ! रसवित् पण्डितगण द्यूत क्रीड़ा में आलिङ्गन चुम्वन एवं मधुराधर पान को छोड़कर किसी को भी श्रेष्ठ पन नहीं मानते हैं ॥ ६४ ॥

कृष्ण इस प्रकार वोलने पर तुम वोलोगी,—इस गोवर्द्धन में भृङ्गी नाम्नी एक पुलिङ्ग कन्या मेरी सखी है वह उक्त विषय में

उक्त्वेत्थमात्मदयितं प्रति वक्ष्यसे मां
याहीत्यथोत्पुलकिनी द्रुतपादपाता ।
तामानयान्युपमुकुन्द मथासयानि
तंलज्जयानि सुमुखीरति हासयानि ॥ ६६ ॥
स्वीया किल व्रजपुरे मुरली तवैका
प्राभून्नतामपि भवानवित्तुं सभार्य्यां ।

इत्थं अनेन प्रकारेण आत्मदयितं श्रीकृष्णं उक्त्वा त्वं माम्प्रति याहीति वक्ष्यसे। तत्श्रुत्वा उत्पुलकिनी अहं द्रुतगमनासती तां पुलिन्दकन्यां आनयानि। एवं मुकुन्द समीपे त्वां आसयानि। आस उपवेशने धातुः। तदनन्तरं श्रीकृष्णं लज्जयानि तेनैव हेतुना सुमुखीः हासयानि ॥ ६६ ॥

स्वसमीपे पुलिन्द कन्या दर्शनात् जातया तया लज्जया पणीकृते चुम्वनादिकं विहाय मुरली पणी कर्तुमवचेतस्य कृष्णस्य मुरल्य प्राप्ति जन्य विषादं वीक्ष्य सख्यः परिहसन्ति-व्रजपुरे तव एका मुरली

निपुण है, और वह इस विषय को चाहती है, मेरा ग्राह्य एवं देय पण के विषय में वह मेरे द्वारा नियुक्त होकर प्रतिनिधि रूप में तुम्हें आलिङ्गन देगी, एवं तुमसे ग्रहण भी करेगी ॥ ६५ ॥

आत्मदयित कृष्ण को उस प्रकार कहकर उक्त पुलिङ्ग कन्या को वुलाकर लाने के लिए मुझे आज्ञा करोगी। मैं उत्पुलकिनी हो कर सत्वर उसको लाकर मुकुन्द के निकट में वैठाऊँगा। और सुमुखी स्त्रियों को हँसाऊँगा एवं कृष्ण को लज्जित करूँगा ॥६६।

भृङ्गी को देखकर कृष्ण चुम्वन पण का त्याग कर मुरली का पण करेंगे, पश्चात् ढूँढ़ कर भी मुरली न मिलने पर विषण्ण हो जायगें, उसे देखकर सखीगण परिहास कर बोलेंगी, वृन्दावन में एक

सालम्पटापि भवतोऽधरसिधुसीक्ताऽ
प्यन्यं पुमांसमिहमृग्यति चित्रमेतत् ॥ ६७ ॥
वंशीं सतीं गुणवतीं सुभगां द्विषन्योऽ
साध्व्योभवत्य इहतत् समतामलव्धाः !
तां क्वापिबन्धमनयं स्तदहं भुजाभ्यां
वद्ध्वैव वः शिखरि गह्वरगाः करोमि ॥ ६८ ॥
इत्यागतं हरिमवेक्ष्य रहस्तदीय
कक्षादहं मुरलिकां सहसा गृहीत्वा ।

स्वीया तामपि स्वभार्य्यां अवितु रक्षितुं भवान् न प्राभूत् लस्पटा सा मुरली भवतोऽधर सम्वन्धि मधुपानासक्तापि अन्यं पुरुषं मृग्यति एतदेव चित्रं ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण आह । सुभगां वंशीं द्विषन्त्यो भवत्य वंश्या समतां अलव्धाः तां वंशीं कुत्रापि स्थले वन्धनं अनयन् तस्मात् अहमपि युस्मान् भुजाभ्यां वद्ध्वा पर्व्वत गह्वर गताः करोमि ॥ ६८ ॥

इति तव निकटे आगतं हरिंवीक्ष्य अहं रह एकान्ते तव कक्षात्

मुरली ही तुम्हारी स्वीया भार्या है, हाय ! हाय ! उस निजभार्या को भी रक्षा करने में तुम सक्षम नही हो, वह लम्पटा भी तुम्हारे अधरा मृतसे सिक्त होकर इस वृन्दावन में पर पुरुष को ढूँढ़ती है। यह अतीव आश्यर्य की वात है ॥ ६७ ॥

उत्तर में कृष्ण वोलेंगे। मेरी वंशी सती गुणवती एवं सौभाग्यवती है, तुमसव असाध्वी हो उनकी वरावरी करने में असमर्था होकर द्वेष करती हो, उसको तुम लोकों में से कोई किसी जगह छिपा कर रखी है। इसलिए में भी तुम सव को गिरि कन्दरमें भुजों से आवद्ध कर रखूँगा ॥ ६८ ॥

तां गोपयानि तदलक्षित मात्तचित्र-
पुष्पेषु सङ्गररसां कलयानि च त्वां ॥ ६८ ॥
ब्रह्मन्निमामनु गृहाण भवन्त मेव
भास्वन्त मर्च्चयितुमिच्छति मे स्नुषेयं ।
इत्यार्य्यया प्रणमितां धृत विप्रवेशे
कृष्णेऽर्पितां च भवतीं स्मितभाग्भजानि ॥ ७० ॥
यान्तीं गृहं स्वगुरुनिघ्नतयानि लोल्यात्
कान्तावलोकन-कृते मिषमामृशन्तीं ।

मुरलीं सहसागृहीत्वा तां श्रीकृष्णालक्षितं यथास्यादेवं गोपयानि । तदनन्तरं मुरलीकान्वेषणछलेन स्तनादिषु ग्रहणाद्धेतो राप्तः पुष्पेषोः कन्दर्पस्य युद्धरसो यया तां पश्यामि चित्रमिति रस विशेषणं ॥६९॥

सुर्य्यपूजां कारयितुं आगतं ब्राह्मणवेश विशिष्टं श्रीकृष्णं प्रति जटिलाह । हे वह्मन् ! इमां वधुं अनुगृहाण इयं मे स्नुषा वधू र्भवन्तमेव भास्वन्तं सूर्य्यं अर्च्चयितुं इच्छति अनेन प्रकारेण आर्य्यया जटिलया प्रणमितां एवं धृत विप्रवेशे श्रीकृष्णे अर्पितां च भवतीं स्मित विशिष्टाहं भजानि ॥ ७० ॥

इस प्रकार हरि को आते देखकर तुम्हारे कक्ष से मुरली को सहसा लेकर कृष्ण के अलक्षित में गोपन कर रखूँगा, एवं तुम्हें कन्दर्प रस निमग्न देखूँगा ॥ ६९॥

सूर्य पूजा के उपलक्ष्य में कृष्ण सूर्य मन्दिर में ब्राह्मण वनकर उपस्थित होगा जटिला उन को कहेगी हे व्राह्मण ! मेरी पुत्र वधु को अनुग्रह करें यह वधु सूर्य के समान तेजस्वीआपको पुरोहित वरण करने के लिए अभिलाषिणी है, यह सूर्य पूजा करना चाहती है । इस प्रकार कहकर विप्रवेशी कृष्ण को प्रणाम करावेगी एवं कृष्ण के प्रति तुम्हें

दूरे ऽनुयानि यदतोऽनुविवर्त्तितास्या
मेहीति वक्ष्यसि तदास्य-रुचो धयन्ती ॥ ७१ ॥
गेहागतां विरहिणीं नवपुष्पतल्पे
त्वां शाययानि परतः किलमुर्मुराभात् ।
तस्मात् परत्र शयनं विसपुञ्जक्लप्त
मध्याशयानि विधुचन्दन पङ्कलिप्तां ॥ ७२ ॥

स्वगुरोर्निघ्नतया आयत्ततया गृहं यान्तीं अथच लोल्यात् सतृणात् कान्तस्य अवलोकननिमित्ते मिषंपरामृशन्तीं त्वां अनु पश्चात् अति दूरेऽहं गच्छानि यद्–यस्मात् अनुपश्चात् विवर्त्तितास्यं यथास्यात्तथा तस्य श्रीकृष्णस्य आस्यकान्तीः पिवन्ती त्वं हे किङ्करि । अत्रागच्छेति वक्ष्यसि ॥ ७१ ॥

मूर्मुरस्तुषाग्निस्तत्तुल्यात् तस्मात् तल्पात् परत्र विसपुञ्जेन मृणाल समूहेन क्लप्तं शयनं तल्पं कर्पूर चन्दन लिप्तांत्वां अधिशयानि

समर्पण करेगी, यह देखकर मैं मुसकुराकर हसूँगा ॥ ७० ॥

अपराह्न लीला

गुरुगण के निग्रहभय से भीत होकर व्यग्रता से तुम घर को जाने लगेगो, एवं कान्त अवलोकन के लिए कुछ ना कुछ छल ढूढ़ती रहोगी, मैं थोड़ी दूर में तुम्हारे पीछे पीछे चलता रहूँगा, तुम मुख फिराकर श्री कृष्ण की मुख कान्ति पान करते करते कहोगी, ओ किङ्करी जल्दी जल्दी चली आओ ॥ ७१ ॥

विरह कातर होकर अपराह्न में घरको आने से मैं तुम्हें नब कुसुम तल्प में शयन कराऊँगा, वह शय्या तूषानल के सदृश प्रतीत होनेपर मैं तुम्हें मृणाल पुञ्ज रचित कर्पूर चन्दन पङ्क लिप्त शय्या में पुनर्वार शयन कराऊँगा ॥ ७२ ॥

आकर्ण्य चन्दनकलाकथितं व्रजेशा-
सन्देशमुत्सुकमतेः सरसा सहाल्याः ।
सायन्तनाशन कृते दयितस्य नव्य-
कर्पूरकेलि वटकादि विनिर्म्मितौ ते ॥ ७३ ॥

लिम्पानि चुल्लि मथतत्र कटाह मच्छ
मारोहयाणि दहनं रचयानि दीप्तं ।
निराज्यखण्ड कदली मरिचेन्दुसीरि
गोधूमचूर्ण्ण-मुख-वस्तु समानयानि ॥ ७४ ॥

चन्दन कलया कथितं यशोदाया सन्देशं "हे राधे श्रीकृष्णस्य सायंकालीन तत्रैव पक्वान्नं निर्म्माय अत्र प्रेषणीयं इति वाक्यं आकर्ण्य दयितस्य सायन्तन भोजन निमित्तं अत्युत्सुकमते- आलिसहिताया स्तव निकटे कर्पूरकेलि वटक श्रेण्या निर्म्मितौ निर्म्माणनिमित्तं अहं आदौ चुल्लिं लिम्पानि इति पर श्लोकेनान्वयः ॥ ७३ ॥

तदनन्तरं चुल्ल्युपरि अच्छं निर्म्मलं कटाह मारोहयानि । दीप्त मग्निञ्च रचयानि । एवं वटक निर्म्माणार्थं जल घृत खण्ड कदली मरिच कर्पूर नारिकेल गोधूम चुर्णादि वस्त्र अहं समानयानि चन्दन द्रवसेक समूहेन करणेन यत् विरहानलस्य ओजः

हे राधे ! तुम चन्द्रकला सखि कथित व्रजश्वरी के आदेश श्रवण कर प्रियतम के सायं कालीन भोजन निमित्त नव कर्पूर केलि प्रभृति के निर्म्माण में सहसा व्यग्र होने पर मैं चूल्हे का लेपन करूँगा , उसमें निर्म्मल कड़ाई रखूँगा, एवं दीप्त अग्नि को संयोग करूँगा, एवं जल धृत खाँड़ कदली मरिच कर्पूर, नारिकेल एवं गोधुम चूर्ण प्रभृति वस्तु भी ले आऊँगा ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अत्यद्‌भुतं मलयज द्रवसेकततया
वृद्धिं जगाम यदिदं विरहानलौजः ।
कर्पूर केलीवटकावलि साधनाग्नि
ज्वालेन शान्तिमनयत्तदिति ब्रुवानि ॥ ७५ ॥
धूलिर्गवां दिशमरुद्ध हरेः सहाम्वा-
रावेत्युदन्त मतुलं मधु पाययानि ।
तत्पान सन्मद निरस्त-समस्त-कृत्यां
त्वामुत्थितां सहगणा मभिसारयाणि ॥ ७६ ॥

प्रावल्यं वृद्धिं जगाम प्राप्ततदेव विरहानलौजः वटकावलि साधनाग्नि ज्वालेन करणेन शान्तिं अनयत् इदमत्यद्‌भूतं इति परिहासवाक्यं अहं ध्रुवानि ॥ ७५ ॥

हरेर्गवां हाम्वाराव सहिता धूलिर्दिशं अरुद्ध्व आवृतं चकार इति अतुलं उदन्तस्वरूपं मधु त्वां पाययानि । तत् जन्य सम्मदेन आनन्देन निरस्तं समस्त पाकादि कृत्यं यस्याः एवम्भुतां उत्थितां गण सहितां त्वां श्रीकृष्ण निकटेऽभिसारयाणि ॥ ७६ ॥

मलयज द्रव समूह सेचन द्वारा जिस विरहानल की शक्ति वृद्धि प्राप्त हो रही थी अतीव आश्चर्य की वात है कि—कर्पूर केलि प्रभृति लड्डु के निर्म्माण कि लिए जो अग्नि ज्वाला उठी थी उससे उक्त विरहानल की ज्वाला शान्त हो गई हैं, मैं इस प्रकार तुम्हें वोलूँगा ॥ ७५ ॥

श्री कृष्ण की हम्बारव कारी गो समूह की चरण धूली समस्त दिशाओं व्याप्त होगई हैं, यह संवाद रूप अतुल मधु का पान तुम्हें कराऊँगा । अनन्तर उक्त मधु पान जनित आनन्द मत्त होकर

तत्कृष्णवर्त्म निकटस्थल मानयानि
निर्व्वापयाणि विरहानल मुन्नतं ते।
आयात एष इति वल्लि निगूढ़गात्री
माकृष्य मह्यमहहेश्वरि ! कोपयानि ॥ ७७ ॥

श्रीकृष्णदृङ्मधुलिहौ भवदास्यपद्म-
माघ्रापयाण्यति तृषन्तवदृक्‌चकोरीं।
तद्वक्त्रचन्द्र विकसत्स्मितधारयैव
संजीवयानि मधुरिम्नि निमज्जयानि।। ७८ ॥

कृष्णस्यागमन वर्त्मनस्तत् रहस्यं निकट स्थलं त्वां आनयानि तेनैव ते तव उन्नतं विरहानलं निर्व्वापयाणिएष कृष्ण आयात इति हेतु वल्लि निगूढ़ गात्रीं त्वां आकृष्य मह्यं कोपयानि मां प्रति कोप विशिष्टां करवाणि आकृष्येत्यनेन स्वस्मिन्‌कृष्णस्य दौत्यं सूचितं।७७

तदनन्तरं श्रीकृष्णस्य दृष्टिरूप भ्रमरेण तव मुख–पद्मं आघ्रापयाणि। एवं तस्य श्रीकृष्णस्य मुखचन्द्रस्य विकासयुक्त स्मित धारया करणेन अत्यन्त तृष्णायुक्तां तव दृष्टिरूप चकोरीं संजीवयानि

समस्त कार्य परित्याग करसखीगण के साथ आनन्द मत्त हो जायेगी, इस अवस्थामें मैं तुम्हें अभिसार कराऊँगा ॥ ७६ ॥

कृष्ण आने के पथ के निकट में मैं तुम्है ले आऊँगा, एवं तुम्हारे उन्नत विरहानल का उपशम करूँगा। हे ईश्वरि। कृष्ण का आगमन होनेपर तुम लता कुन्ज में छिपजाओगी, मैं तुम्हें वसन पकड़ कर आकर्षण करने पर तुम क्रुद्धा हो जायगी ॥ ७७ ॥

श्री कृष्ण नयन भ्रमर को तुम्हारे मुखपद्मका आस्वादन कराऊँगा, अतिशय तृष्णा युक्ता तुम्हारी नेत्र चकोरी को श्री कृष्ण

वैवश्यमस्य तव चाद्भुत मोक्षयाणि
त्वामानयानि सदनं ललिता निदेशात् ।
कर्पूरकेल्यमृत केलितति प्रदातुं
गोष्ठेश्वरी मनुसराणि समं सखीभिः ॥७९॥
गत्वा प्रणम्य तव शं कथयाणि देवि !
पृष्टा तयाथ वटकावलि भोक्षयित्वा ।
तांहर्षयाणि भवदद्भुत सद्गुणाली
स्तत्कीर्त्तितास्ववयसे शृणवानि हृष्टा ॥ ८० ॥

तस्य श्रीकृष्णस्य तवच तदद्भुतं वैवश्यं सखीः वीक्षयाणि ।७९

तया यशोदया स्पृष्टाहं तव शं कल्याणं कथयानि । वटकावलीं दृष्ट्वाहर्ष युक्तयातया यशोदया स्ववयसे स्वसख्ये कीर्त्तिताः तव सद्-गुणालिरहं हृष्टासती शृणवानि ॥ ८० ॥

मुख चन्द्र की हास्य सुधा से जीवित कर कृष्ण माधुर्य में निमग्न करूँगा ॥ ७८ ॥

(सायंलीला)

कृष्ण एवं तुम्हारी अद्भुत विवशता को देखूँगा । ललिता के निदेशसे मैं तुम्हें घर ले आऊँगा, एवं कर्पूर केलि-अमृत केलि प्रभृति मिष्टान्न गोष्ठेश्वरी को देने के लिए सखी गणों के साथ लेजाऊँगा ॥ ७९ ॥

हे देवि ! वहां जाकर यशोदा को प्रणाम कर मिष्टान्न सामग्री अर्पण करूँगा, गोष्ठेश्वरी तुम्हारे विषय पुछने पर तुम्हारी कुशल कहूँगा । अनन्तर लड्डु आदि का प्रदर्शन कर यशोदा को आनन्दित करूँगा, यशोदा तुम्हारी अद्भुत सद्गुणावलि का कीर्त्तन

वीक्ष्यागतं तनयमुन्नत सम्भ्रमोर्म्मि
मग्नां स्तनाक्षि पयसा मभिषिच्य पूरैः ।
अभ्यञ्जनादि कृतये निज दासिका स्ता
माञ्चापि तां निदिशतीं मनसा स्तवानि ।। ८१।।
स्नानानुलेप वसनाभरणै र्विचित्र-
शोभस्य मित्रसहितस्य तया जनन्या ।
स्नेहेन साधु वहुभोजित पायितस्य
तस्यावशेषितमलक्षितमाददानि ।। ८२ ।।

तां यशोदां मनसाहं स्तवानि स्तुतौ कारण सहितां तां विशिनष्टि तद्वीक्षेति । गोष्टादागतं तनयं श्रीकृष्णंवीक्ष्य स्वयं संभ्रमस्योर्म्मिभिर्मग्नां ततः स्वस्तन पयसां पुरैः तनयं अभिषिच्य पुनरपि तनयस्य स्नानादि कृतये ता निजदासिकाः माञ्चाप्यनुलेपादि निर्म्माणार्थं निदिसतीं निदेश कर्त्रीं ।। ८१ ।।

स्नानादिभि र्मित्रसहितस्य विचित्रशोभायुक्तस्य ततस्तयैव जनन्या भोजित पायितस्य श्रीकृष्णस्यावशेषं अन्यैरलक्षितं अहं गृहाणि ।। ८२ ।।

समवयस्क गोपियों के निकट करेगी मैं व्रह सव सुनुंगा ।। ८० ।।

गोष्ठ से समागत तनय को देखकर यशोदा अत्यन्त सम्भ्रम तरङ्ग में निमग्न होकर स्तन्य एवं नयनाम्वु द्वारा कृष्णको अभिषिक्त करेंगी, एवं अभ्यञ्जनादि के लिए दासीगण को एवं मुझको आदेश करेंगी। उस समय मैं व्रजेश्वरी को स्तवन मन ही मन करूँगा ।८०

मित्रों के साथ श्रीकृष्ण स्नातानुलिप्त एवं विचित्र वसन; आभरण द्वारा शोभित एवं जननी के द्वारा स्नेह से भोजित पायित,

तेनैवकान्त-विरहज्वरभेषजेन
तात्कालिकेन तदुदन्तरसेन चापि ॥
आगत्य साधु शिशिरीकरवाणि शीघ्रं
त्वन्नेत्रकर्ण्ण रसना हृदयाणि देवि ! ॥ ८३ ॥
स्नानाय पावनतड़ागजले निमग्नां
तीर्थान्तरे तु निजवन्धुवृतो जलस्थः ।
संमज्ज्य तत्रजलमध्यत एत्य स त्वा
मालिङ्ग्य तत्रगत एव समुत्थितः स्यात् ॥ ८४ ॥

कान्त विरहरूप ज्वरस्य भेषजरूपेण तेनावशेषितेन तत्काल भवेन तस्य श्रीकृष्णस्य स्नानानुलेपनादि तदुदन्तरसेनच त्वन्नेत्रादिनि साधु शिशिरी करवाणि ॥ ८३ ॥

ग्रीष्मादि काल सन्ध्यायाः प्राक् समये पावन सरोवरस्य तीर्थान्तरे घाटे इत्याख्ये पश्चिमादि विभागे निजवन्धुभिर्वृतो जलस्थः श्रीकृष्ण तत्र वन्धु मध्ये निमज्य जल मध्ये तव निकटे एत्य तस्य तड़ागस्य जले स्नानाय निमग्नां त्वामालिङ्ग्ययतः स्थानात् आगतः तत्र जले मग्नःस श्रीकृष्णः समुत्थितः स्यात् ॥ ८४॥

शायित होनेपर कृष्ण का भुक्त्वावशेष अलक्षित रूप में मैं ग्रहण करूँगा ॥ ८२ ॥

हे देवि ! तात् कालिक कान्त विरहज्वर की भेषज स्वरूप उक्त प्रसाद एवं श्रीकृष्ण के तात्कालिक स्नान भोजन संवाद द्वारा मैं तुम्हारे नेत्र, कर्ण रसना एवं हृदय को शीघ्र शीतल करूँगा ।८३

स्नानार्थ पावन सरोवर के जल में तुम निमग्न होकर रहोगी अन्य धाट में कृष्ण निज वन्धु बृत होकर स्नान करेंगे, कृष्ण जलमें डुबकी लगाकर आकर तुम्हें आलिङ्गन कर पुनर्वार निज धाट में

तन्नो विदु र्निकटगा अपि ते ननन्दृ-
स्वस्रादयो न किल तस्य सहोदराद्याः ।
ज्ञात्वाह मुत्पुलकितैव सहालि रेत
च्चातुर्य्य मेत्य ललितां प्रति वर्ण्णयामि ।। ८५ ।।
उद्यानमध्य वलभीमधिरुह्य तत्र
वातायनार्पित दृशं भवतीं विधाय ।
संदर्श्य तत् प्रियतमं सुरभी दुंहानं
मानन्द वारिधि महोर्म्मिषु मज्जयानि ।।८६।।

श्रीकृष्णस्य तच्चातुर्य्यं श्रीराधायाः निकटस्था ननन्द्रादय स्तथातस्य श्रीकृष्णस्य सहोदराद्या रामादयो नोविदुः । आलिभिः सहाहं ज्ञात्वा उत्पुलकिता सती आगत्य ललितां प्रति एतच्चातुर्य्यं वर्ण्णयानि ।।८५ ।।

तत्र पावन सरोवरस्य पूर्व्वस्यान्दिशि यत् उद्यानं पुष्पवनं तन्मध्ये या वलभी चन्द्रशालिका तस्या उपरिवर्त्ति गृहम् तत्र तां अधि-रुह्य आरोरणं कारयित्वा तदीय वातायने अर्पिता दृक् यस्या स्तथा भूतां भवतीं कृत्वा सुरभीदोंहन कर्त्तारं तं प्रियतमं श्रीकृष्णं संदर्श्य आनन्द समुद्रे त्वां निमज्जयानि ।। ८६ ।।

सखागण के समीप में उठेंगे ।। ८४ ।।

इस बृत्तान्त को ननन्दा एवं श्वश्रु प्रभृति कोई नही जानेंगी, एवं श्री कृष्ण के सहोदर प्रभृति भी नहीं जान सकेंगे । मैं यह जान कर सहचरीयों के साथ यह चातुर्य का वर्णन उत्पुलकित होकर श्री ललिता के समक्ष कहूँगा।। ८५ ।।

पावन सरोवर की पूर्वं दिक् में पुष्पोदद्यान स्थित चन्द्रशाला के उपरिस्थित घर में तुम्हें ले जाकर गवाक्ष में नयन अर्पण

गत्वा मुकुन्द मथ भोजित पायितं तं
गोष्ठेशया तव दशां निभृतं निवेद्य ।
सङ्केत कुञ्ज मधिगत्य पुनः समेत्य
त्वां ज्ञापयान्ययि ! तदुत्कलिकाकुलानि ।। ८७ ।।
त्वांशुक्लकृष्णरजनीसरसाभिसार-
योग्यै र्विचित्र वसणाभरणै र्विभूष्य ।
प्रापय्य कल्पतरु कुञ्ज मनङ्ग सिन्धौ
कान्तेन तेन सह ते कलयानि केलीः ।।८८ ।।

अथ गोदोहनाद्यनन्तरं गोष्ठेशया भोजित पायित मिति पाठः शायितश्च श्रीकृष्णं प्रति गत्वा तव दशां तस्य मिलनार्थं उत्कण्ठया व्याकुलादि रूपां निभृत मेकान्तं निवेद्य ततः सङ्केत कुञ्ज मभिगम्य-ज्ञात्वा पुनस्तव निकटे समेत्य अयि ! राधे ! तत्तस्य श्रीकृष्णस्य उत्कण्ठा व्याकुलतादिनि ज्ञापयानि ।। ८७ ।।

शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष रजन्युपयोगिभि र्विचित्र भूषणा भरणैः शुक्लवर्ण कृष्णवर्ण वस्त्रालङ्कारादिभिस्तां विभूष्य ततः कल्पवृक्ष कुञ्जं प्रापय्य ते तव तेनकान्तेन सहानङ्गसिन्धौ केलीः कलयानि ।८८

कराऊँगा । तुम श्रीकृष्ण की गोदोहन लीला दर्शन कर आनन्द सागर की महा उर्म्मि में मग्न हो जायेगी ।। ८६ ।।

हे देवि ! तत् पश्चात् गोष्ठेश्वरी स्नेहसे कृष्ण को भोजन व शयन कराने से मैं निभृत में तुम्हारी स्थिति उनको निवेदन करूँगा, एवं सङ्केत कुञ्ज ज्ञात होकर प्रत्यागमन पूर्वक तुम्हारे निकट कृष्ण की उत्कण्ठा ज्ञापन करूँगा ।। ८७ ।।

(प्रदोष लीला)

तुम्हें शुक्ल कृष्ण रजनी में अभिसार योग्य विचित्र वसन

हे श्रीतुलस्युरुकृपाद्युतरङ्गिणी त्वं
यन्मूर्द्धिन मे चरणपङ्कजमादधाः स्वं ।
यच्चाहमप्यपिवमम्बु मनाक् तदीयं
तन्मे मनस्युदयमेति मनोरथोऽयं ॥ ८६ ॥
क्वाहं परशशतनिकृत्यनुविद्धचेताः
संकल्प एष सहसा क्व सुदुर्ल्लभार्थे ।

संकल्प कल्पद्रुमे श्रीराधाकृष्ण परिचर्य्यादि विषयक मद्भुत-मनोरथं स्वयं विलिख्य एतन्मनोरथं मयि कथमभूत् तत्रचमत्कारं वितर्कयन् "हे तुलस्यादिना" श्रीगुरुप्रसादलभ्य एव नान्यज इत्याह हे तुलसीनि । तद्गुरोः सिद्धदेह गतनाम्ना सम्बोधनं उरुकृपैव द्युत-तरङ्गिणी गङ्गा यस्या हे तादृशि यत् मम मूर्द्धिन त्वं स्वीयं चरण पङ्कजं आदधाः यद्यस्मात् तदीयं चरण पङ्कजीयं अम्बु जलं अहमपि मनाक् अपिवं तत्तस्मात् मे मनसि अयं मनोरथ उदयमेति ॥ ८६ ॥

परशशतौ निकृत शतादधिके शाठ्येऽनुविद्धं चेतोयस्य तथा-भूतोऽहं क्व सुदुर्ल्लभेऽर्थे सहसा एषः संकल्पः क्व, अत्यन्त सम्भाव-नायामत्र क्वद्वयं तव एका कृपैव मामजहती सती अगते में गतिः ।

आभरण द्वारा विभूषित कर कल्पतरु कुन्ज में लाकर कृष्ण के साथ अनङ्ग समुद्र में केलि कराऊँगा ॥ ८८ ॥

(अनन्तर प्रार्थना)

हे तुलसी ! हे उरु कृपा सुर तरङ्गिणि ! तुमने मेरे मस्तक में स्वीय चरण पङ्कज अर्पण किया है, में उन पाद पद्म धौत जल स्वल्प मात्र पान किया है, इसलिए ही यह मनोरथ उदितहुआ है ।८६

असंख्य शठतादि दोष युक्त मेरा चित्त, मैं कहाँ हूँ ओर इस प्रकार दुर्ल्लभ विषय में सहसा सङ्कल्प ही कहाँ है ? इस स्थल

एका कृपैव तव मामजहत्युपाधि-
शून्यैव मन्तुमदधत्यगते र्गतिर्मे ॥ ६० ॥
हे रङ्ग मञ्जरि ! कुरुस्व मयि प्रसादं
हे प्रेम मञ्जरि ! किरात्र कृपादृशं स्वां ।
मामानय स्वपदमेव विलासमञ्ज-
र्य्यालीजनैः सममुरीकुरु दास्य दाने ॥ ६१ ॥
हे मञ्जुलालि ! निजनाथ पदाब्ज सेवा
सातत्य सम्पदतुलासि मयि प्रसीद ।

कीदृशी कृपात्र हेतुगर्भ विशेषणमाह उपाधि शून्या अत्र हेतु माह । मन्तुमपराधमदधती कुशृति निकृति शाठ्य मित्यमरः ॥ ६० ।

हे रङ्गमञ्जरीति । तस्य परम गुरो राख्या हे प्रेमेत्यादि-तद्गुरोः विलास मञ्जरीति तद्गुरोः श्रीनरोत्तम ठक्कुर महाशयस्य ६१

हे मञ्जुलालीति तद्गुरोः श्रीलोकनाथ गोस्वामिनः सेवया सातत्यं सार्व्वकालिकत्वं तदेव सम्पत्तिभिरतुलासि हे गुणमञ्जरीति श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामिनः, हे रसिके रसमञ्जरीति रघुनाथ भट्ट-गोस्वामिनः ॥ ६२ ॥

में अगति की गति तुमही मेरी एकमात्र शरण हो, तुम्हारी निरुपाधि कृपा ही मेरा अपराध ग्रहण न कर मुझको अङ्गीकार किया है ॥६०

हे रङ्ग मञ्जरि ! मेरे प्रति करुणा प्रसादवितरण करो। हे प्रेम मञ्जरि ! मेरे प्रति कृपादृष्टि निक्षेप कहो ! हे विलास मञ्जरि निज चरणारविन्द के दास्य प्रदान कर अन्य सखियों के साथ मुझे अङ्गीकार करो ॥ ६१ ॥

हे मञ्जुलाली ! तुम निज प्राणनाथ की पदाब्ज सेवा सातत्य सम्पद में निरुपमा हो, मेरे प्रति प्रसन्न होओ, हे गुण मञ्जरि मैं

तुभ्यं नमोऽस्तु गुणमञ्जरि ! मां दयस्व
मामुद्धरस्व रसिके ! रसमञ्जरि ! त्वं ॥ ६२ ॥
हे भानुमत्यनुपम—प्रणयाब्धि मग्ना
स्वस्वामिनोस्त्वमसि मां पदवीं नय स्वां
प्रेमप्रवाह पतितासि लवङ्गमञ्ज
र्य्यात्मीयता मृतमयीं मयि धेयि दृष्टि ॥ ६३ ॥
हे रूप-मञ्जरि ! सदासि निकुञ्जयूनोः
केलिकलारस विचित्रित चित्तवृत्तिः ।

हे भानुमतीति श्रीजीव गोस्वामिनः आत्मीयता एवामृतं तन्मयी दृष्टिं मयि धेहि ॥ ६३ ॥

श्रीरूपमञ्जरिति । श्रीरूप गोस्वामिनः राधाकृष्णयोः केलि कला रसेन विचित्रता नाना विधत्वं प्राप्ता चित्तस्य वृत्तिर्यस्यास्तथा भूता त्वं सदासि सदा भवसि । तद्दत्त दृष्टिः त्वयादत्ता दृष्टिर्यत्र तथाभूतोऽहं यत्समकल्पयं सम्यक् कल्पनमकरवं तत्सिद्धौ एतत्ग्रन्थ उक्त स्वमनोरथसिद्धौतव करुणा एव प्रभुतां उपैतु । तत् करुणैव बलात्कारेण मे मनोरथसिद्धिं करोतु । तव कृपैव लभ्येयं मनोरथ

नमस्कार करता हूँ। मुझे दया करो। हे सुरसिके रस मञ्जरि ! मुझको उद्धार करो ॥ ६२ ॥

हे भानुमति ! राधाकृष्ण के अनुपम प्रणय समुद्र में निमग्न हो, मुझ को निज पदवी में स्थान दान करो ! हे लवङ्ग मञ्जरि ! स्वयं प्रेम प्रवाहे में प्रतित हो, आत्मीयतामयी दृष्टि मेरे प्रति विधान करो ॥ ६३ ॥

हे रूप मञ्जरि ! राधा कृष्ण के त्रिविध केलि कलारस में तुम्हारी चित्रबृत्ति अनुरञ्जित है, तुम्हारी करुणासे मैं जो कुछ भी

त्वद्दत्त दृष्टिरपि यत् समकल्पयं तत्-
सिद्धौतवैव करुणा प्रभुतामुपैतु ॥ ९४ ॥
राधाङ्ग शश्वदुपगूहनत स्तदाप्त-
धर्म्मं द्वयेन तनुचित्तधृतेन देव !।
गौरो दयानिधिरभूरपि नन्दसूनो !
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरु त्वं ॥ ९५ ॥
श्रीराधिका गिरिभृतौ ललिताप्रसाद-
लभ्याविति व्रजवने महतीं प्रसिद्धि ।

सिद्धि रिति भावः। अनेन श्रीरूप गोस्वामिनोऽवतारत्वेनास्य प्रथा-प्यायाति ॥ ९४ ॥

श्रीकृष्णचैतन्यदेव कृपैकलभ्यं इदं सर्व्वं इति तमेव श्रीकृष्ण स्वरूपकं स्वहेतुकं निरूपयन् प्रार्थयते। हे नन्दशूनो ! हे देव ! राधाङ्गस्य ! शश्वदालिङ्गनात् प्राप्तेन तनु धर्म्मेन गौरेण गौरस्त्वमभूः चित्त धर्म्मेन दयानिधिरूपित्वं अभूस्तत्तस्मात् स्वमनोरथ लतां त्वं सफलीकुरु ॥ ९५ ॥

कारुण्य युक्तां दृशं मयिनिधेहि हा इति दैन्ये ॥ ॥ ९६ ॥

सङ्कल्प किया है, उसकी सिद्धि के लिए तुम्हारी करुणा ही प्रभुता का प्राप्त करें ॥ ९४ ॥

हे नन्द नन्दन ! श्रीराधा के अङ्गका आलिङ्गन अनवरत करते करते उसके भाव एवं दद्युति रूप धर्मद्वय द्वारा ही तुमने गौर वपु को प्राप्त किया है। तुम्हारा उदय दयानिधि रूप में हुआ है। अतएव मेरी मनोरथ लता को सफल करो ॥ ९५ ॥

इस व्रजवन में विशेष रूप में प्रसिद्धि यह है कि श्री राधा-

श्रुत्वाश्रयाणि ललिते ! तव पादपद्मं
कारुण्यरञ्जितदृशं मयि ! हा ! निधेहि ॥ ९६ ॥
स्त्वं नामरूप गुण शील वयोभि रैक्या
द्राधेव भासि सुदृशां सदसि प्रसिद्धा ।
आगः शतान्नगणयन्तुररीकुरुष्व
तन्मां वराङ्गि ! निरुपाधिकृपे ! विशाखे ॥ ९७ ॥
हे प्रेम सम्पद तुला व्रजनव्ययूनोः-
प्राणाधिकाः ! प्रियसखाः ! प्रियनर्म्म सख्यः ।

हे विशाखे ! त्वं नाम रूपादिभिः श्रीराधयासह ऐक्यात् एकीभावात् सुदृशां सदसि सभायां प्रसिद्धा राधा इवभासि यदि सुन्दरी सभासु तव प्रस्तावो जायते तदाभिरुच्यते अस्या का कथा साक्षात् राधेरेयं । एक पर्य्याय प्राप्तत्वात् राधा विशाखयोर्नम्नाऐक्यं । गुणरूपादिनां ऐक्यन्तुतासामनुभावेन सिद्धि तत्तस्मात् आगोऽपराध स्तस्य शतानि अगणयन्ती सती मां स्वीकुरुस्व ॥ ९७ ॥

हे प्रियसखाः हे प्रियसख्यः । कीदृशाः यूयं प्रेम सम्पद्भिरतुलाः । व्रजणव्येत्यादि प्राणाधिकाश्च युष्माकं सहायेन तयोः प्राणाः

गिरिधर केवल ललिता देवी प्रसाद से लभ्य है । इस को सुन कर हे ललिते ! मैं तुम्हारे पादपद्म का आश्रय ग्रहण किया है । निज कारुण्य रञ्जित दृष्ठि मेरे प्रति निक्षेप करो ॥ ९६ ॥

हे वराङ्गि ! हे निरुपाधि कृपे विशाखे ! नाम, गुण, शील, वयस में व्रजसुन्दरीगण के निकट तुम राधा की भांति प्रकाशित होती हो, यह प्रसिद्ध ही है, मेरा शत शत अपराध की गणना न कर मुझे स्वीकार करो ॥ ९७ ॥

हे राधा कृष्ण के अतुल प्रेम सम्पत्ति के अधिकारी प्रिय

युष्माकमेव चरणाब्ज रजोभिषेकं
साक्षादवाप्य सफलोऽस्तु ममैव मूर्द्धा ॥९८ ॥
वृन्दावनीय मुकुट व्रजलोकसेव्य ।
गोवर्द्धनाचलगुरो हरिदासवर्य्य ।
तत्सन्निधिस्थितियुषो ममहृत्शिलास्व
प्येता मनोरथ लताः सहसोद्भवन्तु ॥ ९९ ॥
श्रीराधया सम त्वदीय सरोवर त्वत्
तीरे वसानि समये च भजानि संस्थां ।

सुखाब्धौ मज्जन्ति तदभावे दुःखाब्धौ मज्जन्ति इत्यतः प्राणाधिकाः युष्माकं चरणधूलिं प्राप्यैव मे मूर्द्धा सफलोऽस्तु ॥ ९८ ॥

हे वृन्दावनीयमुकुट ! हे व्रजलोकसेव्य ! हे अचलगुरो । तत्तव सन्निधौ श्रीराधाकुण्डे स्थितस्य ममहृदयरूपशिलासूक्त प्रकारा एता मनोरथरूप लताः सहसोद्भवन्तु । शीलासु लतोद्गम मेतत् तव सन्निधौ स्थितिरेव कारणं ॥ ९९ ॥

त्वदीय सरोवर श्रीराधाकुण्डे ! हे राधया ! समश्चतीरे

सखा एवं प्रियनर्म्म सखीगण ; तुम्हारे चरणपद्म की रजोऽभिषेक की प्राप्त कर मेरा मस्तक सफल हो, ॥ ९८ ॥

वृन्दावन के मुकुट स्वरूप समस्त व्रजगण सेव्य हरिदास श्रेष्ठ पर्वत गुरु गोवर्द्धन ! तुम्हारे समीप में वासरत मेरे हृदय शीला में उक्त मनोरथ लता सहसा समृद्धि पूर्ण हो ॥ ९९ ॥

हे श्री राधा कुण्ड ! तुम श्रीराधिका के सर्वथा तुल्य हो, मैं तुम्हारे तीर में वास कर रहा हूँ। एवं प्राण त्याग भी यहाँपर करूँगा। तुम्हारे जल-पान से उत्पन्ना मेरी तृष्णा वल्ली समूह को

त्वन्नीरपान जनिता ममतर्षवल्ल्यः
पाल्यास्त्वयाकुसुमिताः फलिताश्च कार्य्याः॥१००॥
वृन्दावनीयसुर पादपयोगपीठ
स्वस्मिन् वलादिह निवासयसि स्वयं यत्।
तन्मेत्वदीय तलतस्थुष एव सर्व्व-
सङ्कल्प सिद्धिमपि साधु कुरुष्व शीघ्रं॥ १०१॥
वृन्दावन स्थिरचरान् परिपालयित्रि।
वृन्दे। तयोरसिकयोरति सौभगेन।

वसानि समये संस्थां मृत्युं भजानि नीरपान जनिता मे तर्षवल्ल्य स्ततस्त्वयापाल्या इत्यादि॥ १००॥

हे सुरपादप योगपीठ! स्वस्मिन् कल्पद्रुमतले योगपीठोपरि यद्यस्मात् स्वयं वलात्मां निवासयसि तत्तस्मात् त्वदीय तले स्थितस्य मे सर्व्वं संङ्कल्प सिद्धि साधु यथास्यात्तथा शीघ्रं कुरुष्व। सन्यासी रूप धारि महाप्रभो राज्ञया तस्य माथुरशिष्यो योगपीठोपरि मुल्यं दत्त्वा कुञ्जं तस्मै वलात्कारेण दत्तं तस्माद्वलादिति पदं दत्तं दैन्येन वा॥ १०१॥

हे वृन्दे! हे वृन्दावनेत्यादि! तयोरति सोभाग्येनाढ्यासि तत्तस्मात् सोभाग्यादयद्वातत्तयामयि कृपांकुरुयथा श्रीराधिका परिजनेषु

कुसुमित एवं फलित करके पालन करो॥ १००॥

हे वृन्दावनीय सुर पादपगण! हे योग पीठ! तुमने बल पूर्वक मुझ को यहाँपर वास कराया है, अतएव तुम्हारे आश्रित व्यक्ति के सर्वसङ्कल्प की सिद्धि सुन्दर रूपमें शीघ्र करो॥ १०१॥

हे वृन्दे! तुम वृन्दावनस्थ समस्त स्थिर चर गण की पालयित्री हो, रसिक राधा कृष्ण की रति सौभाग्य से सम्पन्न हो कृपा

आढ्यासितत् कुरुकृपां गणना यथैव
श्रीराधिका परिजनेषु ममापि सिद्धेत् ॥ १०२ ॥
वृन्दावनावनिपते ! जय सोम--सोम-
मौले ! सनन्दन सनातन नारदेड्य !
गोपीश्वर ! व्रजविलासि युगाङ्घ्रिपद्मे
प्रीतिं प्रयच्छ निरुपाधि नमोनमस्ते ॥ १०३ ॥
हित्वान्याः किलवासना भजतरे वृन्दावनं प्रेमदं,
राधाकृष्ण विलास वारिधिरसास्वादं नचेत्विन्दथ ।

ममापि गणनासिद्धेत् ॥ १०२ ॥

हे गोपीश्वर ! व्रजविलासियुगयोरङ्घ्रिपद्मे निरुपाधि प्रेम प्रयच्छ हे वृन्दावनावनिपते ! हे सोम ! उमा पार्व्वति तया सह वर्तमान ! हे सोम मौले सोम चन्द्रमौले मस्तके यस्य हे सनन्दनादिभि रीड्य स्तुत्यत्वं जय ॥ १०३ ॥

रे मम हृद्वृत्तयो युयं वृन्दावनं भजत । तत्र वृन्दावने चेद्यदि तं प्रसिद्धं राधाकृष्ण विलास वारिधेः रसास्वादं नविन्दथ पुनः तत्र विलास रसास्वादे स्पृहामपि त्यक्तुं नशक्नुथ तदा विश्रद्धां विशि-

---

करो । जैसे श्रीराधिका के परिजन के मध्य में मेरी भी गणना की सिद्धिहो ॥ १०२ ॥

हे वृन्दावनावनि पते ! हे उमापति सोमभौले ! हे सनन्दन तनातन नारद पूज्य । हे गोपीश्वर ! तुम्हारी जय हो । व्रजविलासी युगल के पादपद्म में निरुपाधि प्रेम मुझे प्रदान करो १०६

हे मेरी चित्तवृत्ति समूह राधाकृष्ण विलास वारिधि का आस्वादन ही तुम्हारे प्रयोजन है; उसे प्राप्त करने की यदि अभिलाष हो तव अन्य वासना का त्याग कर प्रेमद वृन्दावन का भजन करो ।

त्यक्तुं शक्नुथ न स्पृहामपिपुन स्तत्रैवहृद्वृत्तयो ।
विश्रद्धाः श्रयत ममैव सततं संकल्पकल्पद्रुमं ।। १०४ ।।
इति श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर विरचितः
श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः सम्पूर्णः ।

श्रद्धा युताः श्रद्धारहितावा हृद्वृत्तयो इमं संकल्पद्रुमं एव सततं श्रयत। अस्य पाठादेव सम्यक् रसास्वादोऽन्येषामपि भविष्यतीति ।।
इति श्रीकृष्णदेव सार्व्वभौम भट्टाचार्य्य कृता
संकल्पकल्पद्रुमस्य टीका समाप्ता ।

और यदि उक्त रसास्वाद अति सत्वर प्राप्त करने की प्रवल वासना हो तव विश्वास पूर्वक निविड़ रूप से यरा यह सङ्कल्प कल्प द्रुम का आश्रय ग्रहण करो ।। १०४ ।।

गौर गदाधरं नत्वा करुणामृतवारिधिं ।
व्याख्येयं कल्पवृक्षस्य हरिदासेन निर्म्मिता ।।

दण्डात्मिका सेवा !

—*—

प्रातः काले उठिया श्रीराधा ठाकुरानि ।
दन्तधावनादि क्रिया करिला आपनि ।।
उद्वर्तनादि दिया सखी कराइल स्नान ।
तवे वेशभूषा कराइल परिधान ।।
एइ कार्य्य श्रीमतीर एक दण्ड याय ।
उत्कण्ठित चित्त कृष्ण दर्शन आशाय ।१ ।
कृष्णलागि रन्धन करिते नन्दीश्वर ।
पथेयाइते एक दण्ड हय अतः पर ।। २ ।।
दुइ दण्ड काल याय रन्धन क्रियाय ।। ४ ।।

आर दण्ड याय कृष्ण भोजन लीलाय ॥ ७॥
अष्टम दण्डेते राधार प्रसाद सेवन।
अवशेष पाइल तवे सर्व सखीगण ॥८॥
अष्ट दण्डेते कृष्णेर गोष्ठ यात्रा हय।
दश दण्डे यान राधा आपन आलय ॥ १० ॥
एकादश दण्डे राधा श्वश्रु आज्ञा लञा।
सूर्य्य पूजा सज्जकैला अति व्यस्ता हैया ॥ ११
तिन दण्ड सूर्य्य कुण्ड याइते याय काल।
सूर्य्येर मन्दिरे राखे पूजा द्रव्य थाल ॥ १४॥
पुष्प तुलिवारे याय सखीगण लञा।
राधा कुण्डे याय कृष्ण दर्शन लागिया ॥
दुइ दण्ड याय राइ निजकुण्डतीरे।
श्री कृष्ण दर्शन कैल स्वकुञ्ज कुटीरे ॥१६ ॥
श्री कृष्ण प्रणाम करि माला चन्दन दिया।
देह प्रेमे गरगर आनन्द वाड़िला ॥
तवे नाना कौतुक करिला दुइ जन।
हिन्दोलाय दुँहे दुले आनन्दितमन ॥
सखीगण लञा तवे करे रस केलि।
कुञ्जमाझे विहरेण दुँह पाशा खेलि ॥
कृष्ण हारिलेन खेलिते राइ सने।
कृष्ण बले विकाइलाम तोमार चरणे
तवे कृष्ण मिष्ट अन्न भोजन करिला।
सखीगण लञा राइ अवशेष पाइला ॥
तवे दुँहे प्रवेशिला श्रीमणि मन्दिरे।
रसेर विलास कैला प्रफुल्ल अन्तरे ॥
ए रूपे विलास रसे याय छय दण्ड।

वाइश दण्ड अन्तरे राइ यान निज कुण्ड ॥२२॥
दुइ दण्ड सूर्य्यालये करिते गमने ॥ २४ ॥
तवे एक दण्ड हय सूर्य्य आराधने ॥ २५ ॥
तदन्तरे सखी सङ्गे राइ गृहे यान ।
पथे चारि दण्डे लागे करिते प्रयाण ॥ २९ ॥
गृहे गिया राइ तवे स्नान समापिया ।
सूर्य्येर प्रसाद पान सखीगण लञा ॥
प्रसाद पाइते राधार याय एक दण्ड ।
कृष्णे देखि पाक कैला अमृतेर खण्ड ॥
पक्वान्न मिष्टान्न सव कृष्णेर लागिया ।
तुलसीर हाते ताहा देन पाठाइया ॥ ३० ॥
एकत्रिश दण्डे राइ विरले वसिया ।
माला गाँथे सुखे तवे कृष्णेर लागिया ॥३१ ॥
चन्दन घर्षणे आर ताम्बूल सज्जाय ।
सन्ध्या आसि उपनीत ए सव क्रियाय ॥
एइ वत्रिश दण्ड हैल दिवा लीला ।
सन्ध्या काले राइ किछु विश्राम करिला ।३२ ।

इति दिवालीला समाप्त ।

—रात्रि लीला—

—*—

दुइ दण्ड श्रीराधार शय्याय शयन । २
तवे दुइ दण्डे राधार हयत रन्धन ॥ ४ ॥
छय दण्ड परे कृष्ण प्रसाद आसिल ।
सखी सङ्गे राधा तवे भोजन करिल ॥७॥
सप्त दण्डे राइ पुनः करिल शयन ।
उठि दश दण्ड अभिसार आयोजन ॥ १०॥

सङ्केत कुञ्जेते येते लागे दण्ड दुइ ॥ १२ ॥
द्वादश दण्डेते कुञ्जे उपस्थित हइ ॥
त्रयोदश दण्डे सेवे ताम्बूल चन्दन ।
कृष्ण सने रासलास्य लयेसखीगण ॥
रासादि कौतुक तवे चारि दण्ड याय ॥१६ ॥
सखीगण मिलि राधा कृष्ण गुण गाय ॥
प्रेमरसे राधा कृष्ण आनन्दित मने ।
कुञ्जेते शयन करे सेवे सखीगणे ॥ १७ ॥
अष्टादश दण्डे पुनः कुञ्जेते विहार ।
नाना पुष्पवेश हय नाना अलङ्कार ॥ १८ ॥
कुसुम युद्धेते एक दण्ड परे याय ।
पुष्प शय्या परे दुँहे शयन कराय ॥
ऊन विंश दण्डे पुनः भोजन विलास ॥ १९
ताहे वृन्दादेवी आदिर मनेर उल्लास ॥
विंश दण्डे राधाकृष्ण करेन विलास ॥ २० ॥
चारि दण्ड विलासेते दोँहार उल्लास ।
चतुर्विंश दण्डे निद्रायान दुइ जने ॥२४ ॥
दुइ दण्ड कुञ्ज निद्रा आनन्दित मने ।
षड् विंशेते कुञ्जभङ्ग विरहभावना ॥ २६ ॥
परस्पर सुधालाप सप्रेम जल्पना ।
एइ रूपे दुइ दण्ड याइते याइते ।
कुञ्ज छाड़ि राधाकृष्ण चलिला गृहेते ॥२८ ॥
दुइ दण्डे आसि राइ यावटे पशिला ॥ ३०
मुहुर्त्तेक रात्रि छिल सुखे निद्रागेला ॥३२ ॥
राधा कृष्ण लीला खेला वर्णने ना याय ।
संक्षेपे कहिनु किछु सेवार निर्णय ।

रागानुगा हञा कर साध्य साधन ।
सिद्ध देहे कर सदा मानसी सेवन ॥
स्थूल देहे कर सदा श्रवण कीर्त्तन ।
वैध धर्मे थाकि धर्म करह पालन ॥
अतिशीघ्र अप्राकृत देह व्यक्त हवे ।
स्थूल लिङ्ग देह छाड़ि नित्य सेवा पावे ॥
श्रीरूप रघुनाथ पदे यार आश ।
चतुःषष्टि गुप्त सेवा कहे कृष्ण दास ॥ ६५ ॥

दण्डात्मिका सेवा समाप्ता ॥

—※—

तृप्तावन्यजनस्य तृप्तिमयिता दुःखे महा दुःखिताः
लब्धैः स्वीय सुखालि दुःखनिचयै र्नो हर्ष वाधोदयाः
स्वेष्टाराधन तत्परा इहयथा श्रीवैष्णवश्रेणयः ।
कास्ता ब्रुहि विचार्य्य चन्द्रवदने ता मद्वयस्या इमाः ॥

गोविन्दलीलामृत–१३–११३ ॥

श्रीकृष्ण,—

दूसरे की तृप्ति से जो सव परि तृप्त होते हैं,
अन्य के दुःख से अत्यन्त दुखित होते हैं ॥

एवं निज विविध सुख उत्पन्न होने पर भी हर्षोदय नहीं होता है, एवं दुःख उपस्थित होने पर भी दुःखी नहीं होते हैं, तथा इस वृन्दावन में श्रीमद्वैष्णव गण की भांति स्वीय इष्ट देवकी सेवामें तत्पर होते हें, हे चन्द्र वदने ! विचार पूर्वक कहो ! ये सव व्यक्ति कौन है ?

श्रीराधा, येसव मेरी वयस्या ललिता प्रभृति हैं ।

श्रीगोविन्द लीलामृत सर्ग १३–११३

—※—

प्रकाशकः—

श्रीहरिदासशास्त्री
श्री हरिदासनिवास
कालीदह–वृन्दावन

प्रकाशनतिथि
विजया दशमी
११–१०–७८

प्रथमसंस्करण ५००

प्रकाशनसहायता
मुद्राद्वयम् २.००

मुद्रक :—

श्री हरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, कालीदह वृन्दाबन।

प्रकाशितग्रन्थरत्न

१ । नृसिंहचतुर्द्दशी

२ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

(मूल अनुवाद)

३ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

(वङ्गलापयार)

४ । श्रीगौरगोविन्दार्च्चनपद्धति ।

५ । श्रीराधाकृष्णार्च्चनदीपिका

६ । श्रीगोविन्दलीलामृत

मूल टीका अनुवाद (सर्ग—१-४)

७ । संकल्पकल्पद्रम

सटीक, सानुवाद

८ । ऐश्वर्य्यकादम्बिनी

(मूल अनुवाद)

प्रकाशनरतग्रन्थरत्न

१ । प्रेम सम्पुट

(मूल, टीका, अनुवाद सह,)

२ । श्रीकृष्णभजनामृतम्

(सानुवाद)

३ । ब्रजरीति चिन्तामणि

(भूल टीका अनुवाद सह)।

प्राप्ति स्थान

सद्ग्रन्थ प्रकाशकः

श्री गदाधरगौरहरि प्रेस

श्री हरिदासनिवास

कालीदह वृन्दाबन